ज्ञानपीठ-लोकोदय ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री० लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५४ ई०
मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—३१

शेर-ओ-सुख़न

पांचवाँ भाग

प्राचीन और वर्त्तमान गजलगोईपर तुलनात्मक अध्ययन, हरजाई, बेवफा, जालिम माशूकके एवज नेक और पाक हबीबका तसव्वुर, रोने-बिसूरनेकी प्रथा बन्द, रंजो-गमका मुसकान-भरा स्वागत, निराशावादका अन्त



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

नजर आये-न-आये कोई आँसू पुंछनेवाला।
मेरे रोनेकी दाद ऐ बेकसी! दीवारो-दर देंगे॥

—शाद अज़ीमाबादी

कोई सुने न सुने इन्क़लाबकी आवाज़।
पुकारनेकी हदोंतक तो हम पुकार आये॥

—अनवर साबिरी

न सोंच ऐ चारागर! नजरह् दिलसे खींचुका नावक।
सजाया है बड़ी काविशसे हमने इस गुलिस्ताँको॥

—दिल शाहजहाँपुरी

साहू-जैन-कुल-दिवाकर

आयुष्मान् प्राणप्रिय अशोककुमार

और

सौभाग्यवती बहूरानी इन्दु-श्री को

अनेक शुभ भावनाओं एवं

शुभाशीर्वादों सहित

सस्नेह भेट



गोयलीय

विषय-सूची

सिंहावलोकन

[१९०१ से १९५४ ई० तककी ग़ज़लगोई]

नई करवट

महिला शायरायें

मुशायरा

नये दौर' और 'शायरीके नये मोड़' में है। अतः उनकी दुनियाके क्रमबद्ध इतिहासके साथ ही ख्याति प्राप्त नज़्म-गो शायरोंका यथास्थान उल्लेख किया जायगा।

४—उन ख्याति-प्राप्त गजल-गो शायरोंका परिचय भी उक्त दोनों नवीन पुस्तकोंमें मिलेगा। जिनकी आयु ५० से अधिक नहीं है। यानी जो इसी बीसवीं शताब्दिमें उत्पन्न हुए और १९२० के बाद १९५४ तक किसी भी अवधिमें प्रसिद्ध हुए। अथवा अपने रंगे-सुखनके कारण वयोवृद्ध होते हुए भी नये युगके शायरोंमें जिनका शुमार है। क्योंकि 'शेरो-सुखन' में प्राचीन शायरोंके अतिरिक्त वर्तमान युगीन स्वर्गस्थ अथवा वयोवृद्ध उन्हीं शायरोंका उल्लेख हुआ है, जिनकी आयु ५०से अधिक है यानी जो १९वीं शताब्दीमें पैदा हुए और १९२० ई० के लगभग उस्तादीके मर्तबेको पहुँच गये। इनसे कम आयुके नज़्म-गो एव गजल-गो शायरोंका परिचय 'शायरीके नये दौर' और 'शायरीके नये मोड़' ग्रन्थोंमें होगा। इतिहासकी सुरक्षाकी दृष्टिसे पुरानोंके साथ नयोंकी खलत-मलत मुझे उचित प्रतीत नही हुई। युगानुसार और क्रमवार परिचय देना ही उपयुक्त जँचा।

५—'शेरो सुखन' गजलका इतिहास है। लेकिन उसमे चन्द ऐसे शायरोका भी परिचय एव कलाम दिया गया है, जो गजल और नज्म दोनो कहते है। क्योकि वे अपनी आयु अथवा ख्यातिके लिहाजसे इसी युगके शायर है। यथा स्थान १०–५ नज्मोंके नमूने भी दे दिये गये है।

६—पाँचवे भागमे ५–६ ऐसे शायरोंका भी उल्लेख हुआ है जो अपनी आयु अथवा कलामकी दृष्टिसे नवीन पुस्तकोके लिए उपयुक्त थे। इसका कारण यही है कि पहिले खयाल था वर्त्तमान युगीन गजल-गो शायरोका परिचय एव कलाम भाग २,३,४ मे अधिक-से-अधिक ७०० पृष्ठोमे सम्पूर्ण हो जायेगा। इसीलिए भाग दो की सूचनाओमे ५ वे भागकी सूचना नही थी, किन्तु पृष्ठ-सख्या आवश्यकतासे अधिक बढ जानेके कारण पाँचवाँ

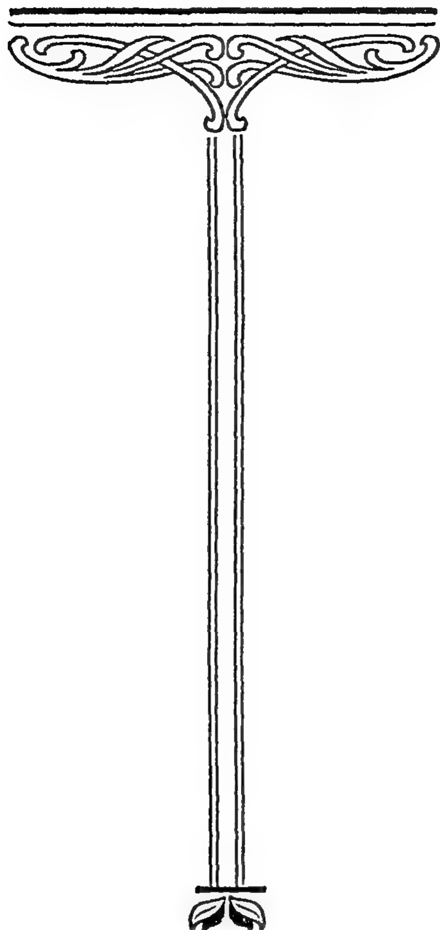
भाग वढाना पडा और उसके शेष पृष्ठोकी पूर्तिके लिए ४–५ शायर नवीन पुस्तकोके देने पडे।

७—'शेरो-सुख़न' के चौथे भाग 'नई लहर' परिच्छेदमे और पाँचवे भागमे पृष्ठ १७६ से २१८, तक, १९४४ से १९५४ ई० तककी भिन्न-भिन्न रगकी गजलोके नमूने दिये गये हैं। ताकि गजलकी सर्वांगीण जानकारी हो सके। इन गजल-गो शायरोमे वृद्ध, युवक, पुरातनवादी, सुधारवादी, साम्यवादी, सम्प्रदायवादी, प्रगतिशील, इन्कलाबी, देशभक्त, सभी तरहके शायर है। इनमे अनेक साहिबे-दीवान हैं और उस्तादीके मर्त्तबेको पहुँचे हुए है और बहुत-से कूचये-शायरीमे पॉव ही रख रहे है। इनमे सर्वश्रेष्ठ शायरोका परिचय और विस्तृत कलाम 'शायरीके नये दौर' और 'शायरीके नये मोड' मे दिया जा रहा है। यहाँ तो नवीन गजलगोईके प्रसगानुसार उनके केवल चन्द अशआर पेश किये गये है।

८—'शेरो-शायरी' और 'शेरो-सुख़न' मे केवल १४ हिन्दू शायरोका उल्लेख हुआ है। वर्त्तमान युगीन अनेक ख्यातिप्राप्त हिन्दू शायरोका परिचय 'शायरीके नये दौर' और 'शायरीके नये मोड' मे सकलित किया जा रहा है और पुराने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध शायरोके कलामकी खोज की जा रही है। उन सवका परिचय किसी भिन्न ग्रन्थमे देनेका प्रयास किया जायगा।

डालमियानगर
१ जुलाई १९५४ ई०

सिंहावलोकन



[१९०१ से १९५४ की ग़ज़ल गोई]

उर्दू-शायरीपर अंग्रेजी-साहित्यका बहुत अधिक प्रभाव पडा। अंग्रेजीके प्रसारसे पूर्व उर्दू-शायरीका एक मात्र माध्यम फारसी-शायरी था। उसका अनुकरण एव पुराने विचारोकी पुनरावृत्ति करते रहना ही तत्कालीन उर्दू-शायरोका एक मात्र लक्ष्य रह गया था। गज़लका क्षेत्र सीमित था। इस सीमित क्षेत्रमे कोई कहाँतक उड़ान भरता? 'गालिब'ने गजलमे पहले-पहल परिवर्त्तन एव परिवर्द्धन किया और इसमे उन्हे बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई। उन्होने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिभासे अनेक मौलिक विचारोका गजलमे इस कौशलसे समावेश किया कि गज़ल नये आबो-तावके साथ चमकने लगी और अब वह केवल मानसिक अभिरुचिको तृप्त करनेके बजाय जीवनोपयोगी भी होने लगी।

शायरीमें परिवर्त्तनके कारण

गालिबकी इस सूझ-बूझसे शायरोको एक नवीन दिशाका ज्ञान हुआ और गजलका क्षेत्र भी पहलेकी अपेक्षा काफी विस्तृत हुआ, किन्तु गालिबकी प्रतिभाके लिए तो असीमित क्षेत्रकी आवश्यकता थी। स्वय अकेले वे कहाँ तक इस क्षेत्रको विस्तृत करते रहते? लाचार उन्हे कहना पडा—

कुछ और चाहिए वुसअ़त मेरे बयाँके लिए

यही वुसअ़त (विस्तीर्णता) उर्दू-शायरीको अंग्रेज़ी-साहित्यसे प्राप्त हुई। अंग्रेजी कवितायें प्रेमके अतिरिक्त—राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावहारिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, प्राकृतिक, राष्ट्रिय आदि अनेक जीवनोपयोगी एव सामयिक विचारोसे ओत-प्रोत होती थी। विश्वकी मुख्य-मुख्य घटनाओको बहुत सुरुचिपूर्ण ढगसे अंग्रेज़ी कविताओं द्वारा व्यक्त किया जाता था।

अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीय शायरोंपर इन कविताओंका बहुत अधिक

अभाव था। वे भी उर्दू-शायरीको परिपूर्ण बनानेके लिए प्रयत्नशील हो उठे।

यद्यपि पहिले-पहिले उर्दू-शायर अंग्रेजी-शायरीके विचारोंसे ही प्रभावित हुए, परन्तु सौभाग्यसे अंग्रेजी-सभ्यताने कोई असर नहीं डाला। अंग्रेजी-कविताका अन्ध-अनुकरण न करके, उन्होंने अपने समाज, देश, संस्कृति आदिको अपनी कविताका लक्ष्य बनाया। वे अपने देशके—वनों-पर्वतों, दरियाओं-वाटिकाओं, सुन्दर नगरों, भव्य इमारतोंकी ललित कलाओं एवं प्राकृतिक दृश्योंको नज़्म करने लगे। अपने देशके पौराणिक-ऐतिहासिक महापुरुषोंके गुणोंका नज़्मों द्वारा बखान करने लगे। कविता केवल कला न रहकर अब वह जीवनोपयोगी बनने लगी।

उन दिनों भारतका वातावरण भी ऐसी शायरीके लिए बहुत अनुकूल एवं उपयुक्त था। १८५७ ई०के विप्लवके बाद भारतके राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रोंमें एक उथल-पुथल-सी मची हुई थी। अंग्रेज़ोंके भारतपर अधिकार जमा लेनेके कारण भारतीय आशंकित हो उठे कि कहीं राज्यके साथ-साथ धर्म-मज़हब, संस्कृति एवं तमद्दुनसे भी हाथ न धोना पड़े। इन्हें सुरक्षित रखनेके लिए हिन्दू-मुसलमानोंमें होड़-सी लग गई। हिन्दुओंने विश्वविद्यालय और गुरुकुलकी नींव डाली तो मुसलमानोंने यूनिवर्सिटी, मकतब क़ायम किये। हिन्दू-मुसलमानोंद्वारा सभायें और अंजुमनें बनाई जाने लगीं। पत्र एवं अख़बार निकाले जाने लगे। समाजोत्थान और राष्ट्रिय चेतनाको उभारनेके लिए नज़्में और कविताएँ लिखी जाने लगीं। 'हाली'ने मुसद्दस लिखकर मुसलमानोंके क़ौमी जज़्बेको उभारा तो 'इक़बाल'ने देश-प्रेमका बीजारोपण किया। नौबतराय 'नज़र', दुर्गासहाय 'सरूर', ज्वालाप्रसाद 'बर्क़' आदि शायरोंने पौराणिक, ऐतिहासिक, महापुरुषोंके जीवन नज़्म किये तो इस्माइल मेरठीने बालकोपयोगी नज़्में लिखीं। अंग्रेजी कविताओंको उर्दू-नज़्मका रूप दिया। कोई प्राकृतिक दृश्योंको नज़्म करने लगा तो कोई भव्य नगरों और इमारतोंकी कलाओंको उजागर करने लगा।

अभी तक उर्दू-शायरीमे वतनियत (देशभक्ति)का वह शदीद जज्बा नही आया था, जिसकी वतनको अजहद जरूरत थी। सौभाग्यसे उन दिनों बगालमे बग-भगके विरुद्ध आन्दोलन छिड गया। इस आन्दोलनको सफल बनानेमे समूचा बगाल प्राणपणसे जुट गया। क्रान्तिकारी दल सगठित किये गये। आग्नेय गद्य-पद्य द्वारा लार्ड कर्ज़नकी 'बग-भग' नीतिकी तीव्र भर्त्सना की गई, और इस आन्दोलनको इतना बल दिया गया कि इसकी लपटे समूचे भारतमे फैल गई। बगालियोद्वारा लिखी गई बग-प्रेमकी कविताएँ जब अन्य प्रान्तोमे पहुँची तो अन्य भाषा-भाषी कवि उनसे काफी प्रभावित हुए और वे प्रान्तीय क्षेत्रसे निकलकर समूचे भारतको अपना देश समझने लगे और देश-प्रेम सम्बन्धी नित-नई कविताएँ लिखने लगे। उर्दू-शायरीपर भी इस आन्दोलनका काफी प्रभाव पडा और उसमें बहुत तेजीसे वतनियतके जज्बे उभरने लगे। इस क्षेत्रमे प० बृजनारायण चकबस्तने आगे बढकर धौंसेपर चोट जमाई और देश-प्रेमके वे राग अलापे कि लोग वज्दमे आ गये।

प्रथम महायुद्ध, रौलट ऐक्ट, जलियानवालाबाग-गोलीकाण्ड और असहयोग आन्दोलनके कारण शायरीने एक नया मोड लिया। इस इन्क-लाबी शायरीके जन्मदाता हज़रत 'जोश' मलीहाबादी है। उन्होने देश-प्रेम, हिन्दू-मुसलिम ऐक्यपर सैकड़ो नज्मे लिखी। साम्प्रदायिक सघर्षोंकी बड़े तीव्र शब्दोमे भर्त्सना की। भारतके स्वतत्रता सबधी प्रत्येक पहलूपर उन्होने इतना लिखा कि भारतका कोई भी कवि उनकी हमसरी नही कर सका! 'सीमाब' अकबराबादी, सागर निजामी आदिने भी इन विषयोपर बहुत काफी लिखा। किसान-मजदूर, पूंजीपति, मुफलिसकी ईद, गरीबकी दीवाली, आदिपर बहुत काफी लिखा गया।[1]

द्वितीय महायुद्धके दिनोमें—ब्लेकहाल, कण्ट्रोल, राशनिग, परमिट,

---

[1]विशेष परिचयके लिए 'शायरीके नये दौर' देखिये।

चोर बाज़ारी, क़हते-बंगाल, एटमबम, आज़ाद हिन्द फ़ौज, सुभाषचन्द बोस, लालकिला, हिटलर, मुसोलिनी, लेनिन, स्टालिन, अमरीका, लड़ाई, १९४२का स्वतन्त्रता संग्राम आदिपर न जाने कितनी नज़्में लिखी गईं और १९४७के बाद तो नज़्मोंका एक सैलाब-सा आ गया। भारत-विभाजन, साम्प्रदायिक-हत्याकाण्ड, हिजरत, शरणार्थी, नरपशु, दरिन्दे, जब इन्सान वहशी बन गया, जश्ने-आज़ादी, आज़ादीके बाद, सुबहे-आज़ादी, वतनमें आख़िरी रात, आदि हज़ारों नज़्में कही गईं और कही जा रही हैं।

इन नज़्मगो शायरोंमें पुरातनवादी, प्रगतिशील, क्रान्तिकारी कांग्रेसी, साम्यवादी समाजवादी, मुसलिमलीगी आदि सभी विचार-धाराओंके हैं और अपने-अपने ढंगसे अपनी भावनाओंको व्यक्त करते रहते हैं।

नज़्म और ग़ज़ल

इस दौरमें नज़्मकी[1] बाढ़ इतनी द्रुतगतिसे आई कि मालूम होता था, ग़ज़ल तिनकेके समान बह जायगी—लेकिन वह बहनेके बजाय उत्तरोत्तर विकसित एवं उन्नत होती गई।

एक-दो वर्ष पूर्व तक नज़्मोंने ख़ूब ज़ोर पकड़ा, किन्तु अब वह आँधी थम गई है और ग़ज़ल पूरे आबो-ताबके साथ चमक रही है। इसका कारण यही है कि छोटी-से-छोटी बातको नज़्ममें बहुत बढ़ा-चढ़ाकर विस्तारसे व्यक्त किया जाता है। इसके विपरीत ग़ज़लमें बड़ी-से-बड़ी बातको एक-दो शेरोंमें समो दिया जाता है। नज़्मगो शायर कुएको तालाब बनाते हैं; ग़ज़लगो शायर गागरमें सागर भरते हैं।

संक्षेपमें यूँ समझिये कि ग़ज़ल सूत्र है, नज़्म भाष्य है। ग़ज़ल कहानी है, नज़्म उपन्यास है। ग़ज़ल संकेत है, नज़्म स्वीकृति है। ग़ज़ल सूक्ति है, नज़्म काव्य है। ग़ज़ल हृदयकी अनुभूति है, नज़्म शायरीका प्रदर्शन है।

नज़्मोंमें अधिकतर सामयिक घटनाओं, तत्कालीन रीति-रिवाजों

---

[1] इन सबका विस्तृत परिचय 'शायरीके नये मोड़'में मिलेगा।

आदिका उल्लेख रहता है। इसलिए उसमे स्थायित्व नही आने पाता। अक्सर देखा जाता है कि जो नज़्म एक समयमे इस सिरेसे उस सिरेतक आम हो जाती है, वही चन्द दिनोमे विस्मर्ण कर दी जाती है। इसके विपरीत गज़लमे जो भी कहा जाता है, वह रगे-तगज्जुलमे कहा जाता है; जिससे कि समय और रुचिके अनुसार लुत्फ उठाया जा सकता है। सामयिक घटनाओका उल्लेख समयपर तो इजेक्शनका काम करता है, परन्तु समयके साथ धीरे-धीरे उसका प्रभाव कम हो जाता है। वग-भग, रौलट-ऐक्ट, जलियानवाला बाग, असहयोग-आन्दोलन, बृटिश-शासन-विरोधी नज्मोको आज कौन पूछता है? पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनैतिक, सुधार आदि आन्दोलन सम्बन्धी और नेताओकी प्रशस्तियोमे लिखी गई नज्मोका युग समाप्त हो गया है। दूर क्यो जाये, द्वितीय महायुद्धके प्रारम्भसे १९५२ ई० तक—हिटलर, मुसोलनी, स्टालिन, राशनिग, चोर बाज़ारी, भारत-विभाजन आदिपर न जाने कितनी नज्मे लिखी गईं, परन्तु आज वे इतनी जल्दी आउट आफ डेट हो गई है कि उनके रचयिता भी उन्हे सुनानेमे सकोचका अनुभव करते है। हालाँ कि जब लिखी गई थी, तब उन्हीका चर्चा चारो तरफ था।

किसी भी तरहके प्रचारके लिए नज्म अत्यन्त उपयोगी साधन है, उसका प्रभाव तुरन्त होता है, लेकिन आवश्यकता पूर्ण होते ही उसका असर भी समाप्त हो जाता है। गज़ल आन्दोलन आदिके लिए विशेष उपयोगी नही। उसका महत्व सुख-शान्तिके दिनोमे मालूम होता है।

नज्मके इतने प्रबल वेगके समक्ष भी गजल पॉव जमाये खडी रही और पूरे जाहो-जलालके साथ जलवागर रही, इसका कारण यही है कि

गजलकी उन्नतिके कारण

वर्त्तमान गजलकी बागडोर जिनके हाथोमें आई, उनका व्यक्तित्व साहित्यिक समाजमे महत्त्वपूर्ण एव प्रतिष्ठित था। वे उन पुराने उस्तादोके जानशीन थे, जिनके झण्डे बज्मे-अदबमे गड़े हुए थे। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व ऐसा था कि नज्मगो शायर भी उनका आदर एवं

रही हो, गजलगो शायर तब भी अपनी धुनमे मस्त मैखानेमे झूमते हुए, वीरानोमे मजनूँनावार घूमते हुए और गुलशनोमे रोते-बिसूरते हुए नज़र आयेगे। ऐसे ही शायरोसे खीजकर मौ० मुहम्मदहुसेन आज़ाद यह कहनेपर मजबूर हुए थे—

हैफ आता है कि खोई उम्र मज़मूँ बाँध-बाँध।
ऐसी बन्दिशसे तो बेहतर था कि छप्पर बाँधते॥

उक्त आक्षेप किन्ही गज़लगो शायरोपर चस्पाँ हो सकते हैं, परन्तु सभीके लिए इस तरहकी धारणाएँ उचित नही, और अब तो गजलका क्षेत्र

गज़लका मर्म

बहुत विस्तीर्ण होता जा रहा है और उसमे नित नये परिवर्त्तन एव परिवर्द्धन होते जा रहे है। गज़लगो शायरोने प्रायः सभी आवश्यकीय विषयोपर प्रकाश डाला है। जीवन सम्बन्धी हर तथ्यपर उनकी दृष्टि रही है। बकौल शख्से—

यह और बात है दुनिया उन्हें न पहचाने

खेद है कि सर्वसाधारण उनके इन जौहरोसे अनभिज्ञ है। सर्वसाधारण तो खैर सर्वसाधारण हैं, वे उन्हे परखनेको दिव्यदृष्टि कहाँसे लाते? आश्चर्य तो इसका है कि अच्छे-अच्छे सुखन फहम भी गज़लका वास्तविक मूल्य न आँक सके। आजकी बात जाने दीजिए। पुराने ज़मानेमे खुदाए-सुखन 'मीर'के समकालीनोमे—सौदा, दर्द, सोज़, और नौजवानोमे—कायम, यकीन, असर, तावाँ, बेदार, ज़िया, हसन, बयान, अफसोस—जैसे ख्यातिप्राप्त शायर मौजूद थे। दिन-रात मुशायरोकी धूम रहती थी। फिर भी 'मीर'को यह कलक रहा कि उनके जौहरको परखनेवाले जौहरी न मिले। इस कलकको उन्होने पचासो बार अनेक तरहसे व्यक्त किया है—

हविस परस्त एवं पियक्कड है कि पीनेकी सामर्थ्य न रखते हुए भी उसके मोहमे लिप्त है। इस शेरको 'शेरोशायरी'मे देते हुए भी मै इसके अन्तरगसे परिचित था; परन्तु आप बीती घटनाने जो शेरका लुत्फ दिया, वह बयानसे बाहर है।

१४ अक्तूबरसे १५ दिसम्बर तक खाँसीकी पीडाके कारण मुझे चारपाईपर पडना पड़ा। मौत जब बार-बार आकर झाँकने लगी तो डाक्टरो और हितैषियोने लिखने-पढनेकी सख्त पाबन्दी लगा दी। शेरोसुखनके २, ३, ४ भाग इलाहाबाद ला जर्नल प्रेसमे कम्पोज़ हो चुके थे। उनके प्रूफकी मै बहुत उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहा था। अपने जीवनकालमे ही उनके छपवानेकी लालसा मुझे कुरेद-कुरेदकर खाये जा रही थी। रुग्ण शैय्यापर पडा हुआ बहुत बे-सब्रीसे रोज़ाना प्रूफ आनेका इन्तज़ार-करता रहता था। प्रतीक्षा करते हुए जब कई रोज़ हो गये, तब मैने ज्ञान पीठके मैनेजर श्री बाबूलालजी फागुल्लसे पूछा तो उन्होने हिचकिचाते हुए कहा कि "प्रूफ तो कई रोज़से आये पडे है, परन्तु डाक्टरके परामर्शानुसार आपको नही दिखाये गये है।" मैने कहा—"कौन कम्बख्त उन्हे पढना चाहता है, मगर भगवान्‌के वास्ते तुम उन्हे मेरे सामने मेज़पर तो रख दो ताकि मै उन्हे पडा-पडा निहार तो सकूँ।" फागुल्लजीने प्रूफ लाकर रखे ही थे कि कई हितैषी बन्धु आ गये। उन्होने जो प्रूफ मेरे पास देखे तो फागुल्लजीको उठा ले जानेके लिए इशारा किया। मैने रखे रहनेकी मिन्नत की, तो बोले—"जब प्रूफ पढनेकी इजाज़त नही है तो सामने रखनेसे क्या लाभ ?" हितैषियोकी नासहाना नसीहत सुनकर मै तडप उठा और बेसाख्ता गालिबका उक्त शेर मुँहसे निकल पड़ा। आँखे डबडबा आईं और मन भारी हो गया। हितैषियोने मेरे मनकी व्यथाको समझा और प्रूफ वही पडे रहने देकर मुझे मानसिक शान्ति पहुँचाई। इतने दिनो बाद मै उस रोज़ गालिबके उक्त शेरके अभिप्रायको महसूस कर सका, और यह भी यकीनी नही कि अब भी ठीक-ठीक समझ पाया हूँ।

गजल इतनी भावपूर्ण कोमल कला है कि उसके वास्तविक रहस्यको पारखी दृष्टि ही जान सकती है। उसकी अपनी निजी भाषा, भाव, उपमा, अलंकार और शैली है। अपने भाव व्यक्त करनेका अपना निजी लबो-लहजा और ढग है।

गजलका वार पत्थरकी तरह सीधा न होकर दुशालेमे लिपटा हुआ होता है। गज़लगो शायर खुदाकी बात कहे या शैतानकी, आध्यात्मिकताकी गुत्थियाँ सुलझाये या आधिभौतिकताकी, तात्विक विवेचन करे या राज-नैतिक घात-प्रतिघातका वर्णन, उसे सब गज़लकी सीमाके अन्तर्गत कहना पड़ता है। सीमाके बाहर कहा हुआ शेर गज़लका शेर नही कहला सकता। वह तगज्जुल (गज़लगोई)से गिरा हुआ शेर होगा। गजलमें सीधे भाव व्यक्त न करके परदेमे कहे जाते है।

इक आफ़ते-जमाँ है यह 'मीर' इश्के-पेशा।
परदेमें सारे मतलब, अपने अदा करे है॥

गज़ल सकेतात्मक शायरी है। चाहे उसमे कैसे ही भाव व्यक्त किये जाये; वे सब गुलो-बुलबुल, साकी-ओ-मैखाना एव हुस्नो-इश्क आदिके परदेमे कहे जाते है। बकौल 'गालिब'—

हरचन्द हो मुशाहद-ए-हककी गुफ़्तगू।
बनती नही है, बादा-ओ-सागर कहे बग़ैर[1]॥

और इन बादा-ओ-सागरकी आडमे कहे हुए भावोको समझना आसान नही—

---

[1]ईश्वरीय चर्चा (मुशाहद-ए-हककी गुफ्तगू) करनेके लिए भी शराब और सुराही जैसे शब्दोका प्रयोग अनिवार्य है। गज़लमे उसकी निश्चित उपमाओका प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है।

'मीर' साहबका हर सुख़न है रम्ज़[1]।
बे हक़ीक़त है शेख़ क्या जाने ॥

जो बात कही जाय, वह रगे-तगज्ज़ुलमे कही जाय, यही गज़लगो शायरका बहुत बडा कमाल है। यूँ तो अध्ययन एव अभ्याससे और गुरुकी अनुकम्पासे जो चाहे, वही व्यक्ति गज़ल कह सकता है, परन्तु तगज्ज़ुल जिस भावपूर्ण एव सकेतात्मक कलाका नाम है, उसमे सफलता प्राप्त करना हँसी-खेल नही। बकौल 'मीर'—

है नज़्मका सलीका हरचन्द सबको लेकिन—
जब जाने कोई लावे यूँ मोतीसे पिरोकर ॥

मोतीसे पिरोनेकी कलामे दक्षता प्राप्त करनेके लिए अपनेको डुबोना और खपाना पडता है। गज़ल हुस्नो-इश्क एवं दर्दो-गमकी शायरी है। गज़लका शेर प्रभावोत्पादक तभी होगा, जब वह उसीके अनुरूप दिलो-दमाग रखनेवाले शायरने कहा होगा।

मीर— 'मीर' तब गर्मे-सुख़न कहने लगा हूँ मै कि इक उम्र।
जूँ शमअ़ सरे-शाम ता-सुबह जला हूँ ॥

क्या करूँ शरह ख़स्ता जानीकी ?
मैंने मर-मरके जिन्दगानी की ॥

आबलेकी-सी तरह, ठेस लगी, फूट बहे।
दर्दमन्दीमें गई, सारी जवानी उसकी ॥

इश्कमें खोये जाओगे तो बातकी तह भी पाओगे।
क़द्र हमारी कुछ जानोगे, दिलको कहीं जो लगाओगे ॥

---

[1]सकेत, भेद, पेचीदा बात है।

आज़ार खीचनेके मज़े आशिकोसे पूछ।
क्या जाने वोह कि जिसका कही दिल लगा न हो॥

हृदय प्रेमसे ओत-प्रोत हो, मन इतना सवेदनशील हो कि दीन-दुखियो-को देखकर द्रवित हो उठे। जीवनभर शमअकी तरह गलता रहे, तब कही कलाम प्रभावोत्पादक बन पाता है। रग और तूलिकाके सहारे चित्र तो बन जाता है, परन्तु मुँह बोलती तसवीर नही बन पाती। यह तभी बन पाती है, जब चित्रकार अपनेको खो और डुबो देता है।

दिल नहीं दर्दमन्द अपना 'मीर'।
आहोनाले असर करें क्योकर॥

गुलो-बुलबुल, साकी-ओ-मैखाना, हुस्नो-इश्क आदि रूपकोद्वारा गज़लका निर्माण होता है। यही गज़लके प्राण है। इनको बगैर समझे गज़लका वास्तविक मर्म हृदयगम नही हो सकता। इन रूपकोसे ही गज़लके शेरमे रगे-तगज्जुल आता है। इन्ही रूपकोसे सोजो-गुदाज पैदा होता है। यही हृदतत्रीको झकृत कर देनेकी उसे शक्ति देते है। यही उसमे शेरियत लाते है।

गज़लके रूपक

गुलो-बुलबुल

गुलो-बुलबुलकी आड लेकर गजलगो शायरोने राजनैतिक दाव-घातो, शोषितो, पीडितो आदिके सम्बन्धमे इस खूबीसे कहा है कि सब कुछ कहनेपर भी वे गिरफ्तमे नही आ सकते। गुल, बुलबुल, गुलशन, बागबाँ, सैयाद, गुलची, कफस, आशियाँ यह सब रूपक[1] है, जिन्हे गज़लगो-शायर अपने मनोभाव व्यक्त करनेके लिए उपयोग करते है। जो शायर इन

[1]इन सब रूपकोपर शेरोशायरी, पृ० ८०–९३मे विस्तारसे प्रकाश डाला गया है।

रूपकोके गूढ अर्थसे अपरिचित होते हुए भी शेर कहते है, वह स्वयं भी उपहास्पद होते है और शायरीको भी दूषित करते है। ऐसे ही शायरोकी बदौलत गजल बदनाम हुई। एक पुराने लखनवी शायरका शेर है—

बाग़में जाते तो हो पहने गुलाबी टोपी।
बुलबुलें-बे-अदब आ बैठे न ऐ जॉ सरपर॥

यह बेचारा शायर इतना ही जानता था कि बुलबुल गुलाबके फूलपर आशिक रहती है। अत: उसकी कल्पनाने ज़ोर मारा तो वह केवल इतनी उड़ान भर सका कि बुलबुल फूलके धोकेमे गुलाबी टोपीवालेके सरपर भी बैठ सकती है।

वह गरीब जब गज़लके अन्तरंगसे और उसके रूपकोके वास्तविक भावोसे परिचित ही न था, तब इसके सिवा वह कहता भी क्या? अब रगे-तगज्जुलके चन्द अशआर दिये जाते है—

दुबले-पतले महात्मा गाधी जब बन्दी किये गये तो देशमे एक मातम-सा छा गया था। उस भावनाको 'साकिब' लखनवीके शब्दोमे यूँ व्यक्त किया जा सकता है—

कहनेको मुश्ते-परकी[1] असीरी[2] तो थी, मगर—
ख़ामोश हो गया है चमन बोलता हुआ॥

वन्दी-गृहमे पड़े हुए भी यदि शत्रुका कोई भेद मालूम हो जाय तो जैसे भी बने उसे देशके कर्णधारो तक पहुँचा देना चाहिए—

साकिब— किसीका रंज देखूँ यह नही होगा मेरे दिलसे।
नज़र सैयादकी झपके तो कुछ कहदूँ अनादिलसे[3]॥

---

[1]मुट्ठीभर परोकी; [2]गिरफ्तारी; [3]बुलबुलोंसे।

सोनेके पिंजरेमे पराधीन जीवन बितानेकी अपेक्षा रूखी-सूखी खाकर झोपडेमे रहना हजार दर्जे बेहतर—

आरज़ू— ऐ 'आरज़ू' ! इस बाग़में फूलोंके कफ़ससे।
बहतर हमें वोह अपना नशेमन कि है खसका[1]॥

शरीफो एव लुच्चोको एक लाठी हॉकनेवाला शासक अन्धा नही है तो और क्या है।

आरज़ू— उदू न थी, मगर अन्धी ज़रूर थी बिजली।
कि देखे फूल, न पत्ते, न आशियाँ, देखा॥

देशकी सुख-समृद्धिका उपयोग करनेवाले देशके दुर्दिनोमे भी अपने देश-प्रेमका परिचय दे—

जिगर— काँटोका भी हक है आख़िर।
कौन छुड़ाये अपना दामन॥

हमारी आँखोके सामने हज़ारो देश-भक्त गोलीसे भून दिये गये, फॉसी चढा दिये गये और हम अशक्त बने सब कुछ देखते रहे। कैसी दयनीय स्थिति थी—

सफी— ज़ोर ही क्या था जफा-ए-बागवाँ देखा किये।
आशियाँ उजड़ा किया हम नातवाँ देखा किये॥

चन्द शेर बगैर टीका-टिप्पणीके दिये जा रहे है। सुविधाके लिए उनके ऊपर शीर्षक लगा दिये है—

अकर्मण्यता

असर— यह सोचते ही रहे और बहार खत्म हुई।
कहाँ चमनमें नशेमन बने, कहाँ न बने?

---

[1]घास-फूसका।

सामर्थ्यके अनुसार

आनंदनारायण मुल्ला— अपनी कूवत आज़माकर अपने बाज़ू तोलकर।
आशि-ए-हस्तीमें[1] उड़ना है तो उड़, पर खोलकर॥

सहृदयता

महशर— तमाम उम्र इसी एहतयातमें[2] गुज़री।
कि आशियाँ किसी शाख़े-चमनपै बार[3] न हो॥

सुखमें दुःख छिपा है

ख़ुर्शीद— कफ़स दूर ही से नज़र आ रहा है।
कयामत है अपनी बुलन्द आशियाँनी[4]॥

क्षण भंगुर वैभव

मीर— कहा मैंने "कितना है गुलका सबात"[5]?
कलीने यह सुनकर तबस्सुम[6] किया॥
देर रहनेकी जा नहीं यह चमन।
बू-ए-गुल हो, सफीरे-बुलबुल हो॥

यह कृपालुता ?

अदीब सहारनपुरी—कौन इस तर्ज़े-जफाये आसमाँकी दाद दे?
बाग़ सारा फूँक डाला, आशियाँ रहने दिया॥

---

[1]जीवन-आकाशमें; [2]सावधानीमें, [3]बोझ, [4]ऊँचाईपर घोसला बनाना, [5]निवास, स्थायित्व, [6]मुसकान।

साक़ी-ओ-मैखाना

गजलमे वर्णित, शराब, रिन्द, मैखाना, साकी आदिसे जनसाधारण वास्तविक मद्य-प्रसारका तात्पर्य्य समझते है। उन्हे क्या मालूम कि जिन गजलगो शायरोने कभी शराब छूई तक नही, वे भी इस विषयपर जीवन पर्यन्त लिखते रहे। क्योकि यह सब भी गजलके अत्यन्त आवश्यक रूपक है। इनके बगैर काम ही नही चल सकता। यहाँ हम चन्द शेर बगैर किसी टिप्पणीके पेश कर रहे है। आशा है उनके शीर्षकोसे भावोके समझनेमे कोई कठिनाई न होगी।

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य

मुल्ला— कभी तेग़े-कलमसे भी मिटे है तिफरके[1] दिलके।
मिटाना है तो पहले रखके सागर दरमियाँ समझो॥

लालची

रियाज़— मकसूद है कोई न पिये वोह हरीस[2] हूँ।
वाइज़ हुआ, मै रिन्द कदहख्वार क्या हुआ॥

दानीसे

अदम— शिकन न डाल जबीपर शराब देते हुए।
यह मुसकराती हुई चीज़ मुसकराके पिला॥

आलोचकोसे

दिल— तेरी फर्दे-अमल[3] हो पाक इस दुनियामें ऐ वाइज़!
कोई पीता है पीने दे, कही ढलती है ढलने दे॥

---

[1]वैमनस्य; [2]लालची, ईर्ष्यालु, [3]कर्मोंकी तालिका।

शासन-व्यवस्थापकोंसे

मुल्ला— निज़ामे-मैकदा साक़ी ! बदलनेकी ज़रूरत है।
हज़ारों है सफ़ें जिनमें, न मै आई, न जाम आया ॥

वुसअ़ते-बज़्मे जहाँमें हम न मानेंगे कभी।
एक ही साक़ी रहे, और एक पैमाना रहे ॥

ये छिद्रान्वेषी

ताविश सुल्तानपुरी—जहाँवाले न देखें इसलिए छुप-छुपके पीता हूँ।
ख़ुदाका ख़ौफ कैसा? वोह तो इसयॉपोश[1] है साक़ी!

कलके ढोंगी, आज नेता

मीर— मसजिदमें इमाम आज हुआ, आके वहाँसे।
कल तक तो यही 'मीर' ख़राबात नशीं[2] था ॥

चेतावनी

मीर— ऐ वोह कोई जो आज पिये है शराबे-ऐश।
ख़ातिरमे रखियो कलके भी रंजो-ख़ुमारको ॥

हुस्न-ओ-इश्क

गज़ल, हुस्नो-इश्क और सोजो-गुदाज़ (व्यथा-वेदना) की शायरी है। जिन गज़लगो शायरोको कभी किसीपर मरनेकी सआदत मयस्सर

---

[1] अपराधोपर परदा डालनेवाला, पाप ढकनेवाला; [2] शराबख़ानेमे पड़ा रहनेवाला।

न हुई, उनको भी कूचये-हुस्नकी नग्मासराई करना लाज़िमी होती है। क्योंकि गजलका निर्माण ही हुस्नो-इश्कके तन्तुओसे हुआ है।

गजलके बाह्य रूपसे ऐसा मालूम होता है कि गजलगो शायर कूच-ए-महबूब (प्रेयसीकी गली)मे फटेहाल दीवानावार घूमते रहते है। माशूकके दरवानोसे पिटते है, जलीलो-ख्वार होते है, मगर वहाँसे टलनेका नाम नही लेते। महबूब (प्रेयसी) उनकी हरकतोसे नालाँ है, मगर वे खतोका ताँता बाँधे रखते है। खत ही नही भेजते, दरबानकी निगाह बचाकर स्वय भी मकानमे कूद जाते है। माशूककी गालियाँ खाते है, दुतकारे जाते है, मार सहते है, घायल होते है, मगर अपनी हरकतोसे बाज़ नही आते। गोया ज़लीलोख्वार बने रहनेके अतिरिक्त उन्हे कोई अन्य कार्य्य नही है। न उनके पत्नी है, न बच्चे है, न गुरुजन है और न उनके पास कोई लोकोपयोगी कार्य है।

लेकिन शेरका अन्तरग देखिये तो कुछ और ही आलम नज़र आता है। यह नही भूलना चाहिए कि गजलगो शायर हर बात इशारेमे और परदेमे बयान करता है। कभी वह विश्व-वेदनाको अपनी वेदना बनाकर गमे-जानाँके परदेमे पेश करता है[1] और कभी अपनी वेदनाको विश्वभरकी वेदना समझकर गमे-दौराँके रूपमे पेश करता है।[2] यानी जो वह ससारमे देखता और सुनता है, वह इश्को-हुस्नके परदेमे बयान करता है। बकौल 'मीर'—

---

[1]जो गम हुआ, उसे गमे-जानाँ बना लिया

यानी सासारिक आपदाये किसी भी कारणसे आये, वे सब इश्ककी वजहसे आई। यही समझकर उसका उल्लेख गज़लमे किया जाता है।

[2]हमपर अकेले ही यह आपदाओका पहाड नही टूटा है, अपितु समस्त मानव-समाज इसके नीचे पडा कराह रहा है। उन सबका दु ख दूर होनेमे ही अपना कल्याण है। यही भावना गमे-दौराँ है।

कहियेगा उससे किस्स-ए-मजनूँ।
यानी परदेमें ग़म सुनाइयेगा ॥

अर्थात्—गज़लगो सब बाते रूपकोद्वारा परदेमे कहता है। चन्द उदाहरण देखिये—

बादशाहत मिटनेपर मुग़लिया सल्तनतका मिट जाना, इतनी बड़ी घटना है कि उसपर नज्मगो शायर पोथा लिख सकता है, परन्तु गज़लगो शायरको तो एक ही शेरमे सब कुछ व्यक्त करना चाहिए और वह भी रगे-तगज्जुलमे। मुग़लिया सल्तनतके मिटनेसे, शाहज़ादो और शाहज़ादियोके इधर-उधर भटकनेसे और दिल्लीके उजडनेसे प्रभावित होकर 'मीर'ने अपनी कई गज़लोमे इस तरहके भाव व्यक्त किये है—

नाम आज कोई याँ नहीं लेता है उन्होका।
जिन लोगोके कल मुल्क यह सब जेरे-नगी था ॥

था मुल्क जिनके जेरे-नगी साफ मिट गये।
तुम इस ख़यालमे हो कि नामो-निशाँ रहे ॥

सब्ज़ाने-ताज़ा रौकी जहाँ जलवागाह थी।
अब देखिये तो वाँ नहीं साया दरख़्तका ॥
दिल्लीमें आज भीक भी मिलती नही उन्हे।
था कल तलक दमाग़ जिन्हे ताजो-तख़्तका ॥

'मीर'के उक्त चारो शेर व्यथा-पूर्ण है और तत्कालीन इतिहासका एक झलकमे दिग्दर्शन करानेमे कमाल रखते है, किन्तु इन अशआरमे रगे-तगज्जुल नही दिखलाई देता। गजलके प्राण हुस्नो-इश्कके रूपकका कही भी उल्लेख नही हुआ।

उजड़ी हुई दिल्लीमे बैठकर मिर्ज़ा 'ग़ालिब' इसी घटनाको रंगे-तगज्जुलमे देखिये किस सलीकेसे व्यक्त करते है—

दिलमें ज़ौके-वस्लो-यादे-यार तक बाकी नहीं।
आग इस घरमें लगी ऐसी कि जो था जल गया[1]॥

इतने बड़े विध्वंसकी बात 'ग़ालिब'ने किस ख़ूबी और सादगीसे कही है कि कानूनकी ज़दमे भी न आये, सुख़न-फहम लुत्फ अन्दोज हो सके और जनसाधारण ज़ौके-वस्लके चक्करमे ही पडे रहे।

पिछले पृष्ठोमे 'तगज्जुल' शब्द कई बार प्रयुक्त हुआ है। तगज्जुलसे

रंगे-तगज्ज़ुल

हमारा आशय गजलगोईसे है। कवितामे जब तक कवित्त्व न हो, कविता नही। मिठाईमे मिठास, मेहदीमे लाली, फूलमे सुगन्ध और आदमीमे आदमीयत होना आवश्यक है तो गज़लमे तगज्ज़ुलका होना भी ज़रूरी है। तगज्जुलके बिना ग़ज़ल बेजान, बेमज़ा और फीकी है। गज़लमे उसके रूपकोके मिश्रणसे रंगे-तगज्ज़ुल पैदा होता है।

चन्द उदाहरण—

ज़ौककी गजलका एक मशहूर शेर है—

नाम मंज़ूर है तो फ़ैज़के असबाब बना।
पुल बना, चाह बना, मसजिदो-तालाब बना॥

शेरके वज़नने शायरको इजाज़त नही दी, वरना मतब बना, मकतब

---

[1]अब हमारे हृदयमे ज़ौके-वस्ल (प्रेयसीके मिलनकी अभिलाषा) और यारकी याद तक बाकी नही है। क्योंकि हमारे हृदयरूपी घरमे ऐसी आग लगी है कि सर्वस्व भस्मीभूत हो गया।

बना, वगैरह और भी नेक कामोकी फहरिस्त नज्म की जा सकती थी। शायरने जिस भावनासे प्रेरित होकर शेर कहा है, उसमे वह सफल हुआ है, लेकिन इस शेरमे तगज्जुल तलाश करनेपर भी नही मिलता। खालिस मौलवियाना रंगका शेर है। अगर मौलवियो-जैसी बेतुकी बाते शायर भी कहने लगे तो फिर उनकी विशेषता क्या रही? 'अज़ीज़' लखनवी नेक काम करनेकी प्रेरणा यूँ करते हैं—

पैदा वोह बातकर कि तुझे रोयें दूसरे।
रोना खुद अपने हालपै यह जार-जार क्या?

शेरमे नेक कामोकी कोई सूची नही है, फिर भी उसके पढनेसे मनको प्रेरणा मिलती है। आशिक सदैव रोता विसूरता रहता है। गज़लके इसी रूपकको देनेसे शेरमे तग़ज़्ज़ुल भी आ गया और चूँकि शायरने स्वयंको सम्बोधित करके लिखा है, ज़ौककी तरह दूसरोको नसीहत नही की। इसलिए मौलवियतके इलज़ामसे भी बरी रहे। इसी भावके द्योतक दो शेर 'मीर'के भी मुलाहिज़ा फरमाएँ—

बारे दुनियामें रहो ग़मज़दा या शाद रहो।
ऐसा कुछ करके चलो, याँ कि बहुत याद रहो॥

कहता है कौन तुझको याँ यह न कर तू वोह कर।
पर हो सके तो प्यारे टुक दिलमें भी जगह कर॥

अज़ीज़ने कहा है—

पैदा वोह बात कर कि तुझे रोयें दूसरे

आशय तो उनका यही था कि हम ऐसे भले काम करे कि दूसरे हमे याद करे। मगर 'याद'के बजाय उन्होने 'रोये दूसरे' नज्म किया। दूसरोंके रोनेसे लानत-मलामतका भी आशय निकलता है कि लोग कहे "कम्बख्त

आप तो मर गया और हमे मार गया।" सताये हुए लोग बुरोंकी जानको उनके मरनेके बाद भी रोते रहते है। इस ऐबसे 'मीर'का उक्त पहला शेर बेदाग है—

ऐसा कुछ करके चलो याँ कि बहुत याद रहो

याद प्यारेकी और भले आदमियोकी आती है बुरोकी नही।

'मीर'का दूसरा शेर दूसरेको नसीहत देनेकी वजहसे मौलवियतके दायरेमे आ जाता, किन्तु 'मीर'का कमाल देखिये कि दामन बचाकर साफ निकल गये। दूसरे मिसरेमे 'प्यारे' शब्द डालकर 'मीर'ने वोह रगे-तगज्जुल पैदा कर दिया है कि दाद देनेको उपयुक्त शब्द नही मिल पा रहे है।

'हाली'का यह शेर बहुत मशहूर है—

खेतोंको दे लो पानी यह बह रही है गंगा।
कुछ कर लो नौजवानो ! उठती जवानियाँ है॥

'हाली'की नज्मका उक्त शेर अपनी जगहपर बहुत खूब है और नवयुवकोको स्फूर्ति एव प्रेरणा देता है। चूंकि उक्त शेर नज़्मका है, इसलिए इसमे रगे-तगज्जुल नही आ पाया है। रगे-तगज्जुलमे इसी भावका द्योतक तसलीमका शेर है—

इल्तफाते-जोशे-वहशत फिर कहाँ ?
हो सके जबतक बयाँबा देख ले॥

[दीवानगीकी यह कृपाये फिर कहाँ मयस्सर ? इसी आलममे जितना जगल देखा जा सके देख लिया जाय]।

जवानी दीवानी नही हुई तो फिर जवानी क्या ? और उस हालतमे कुछ हाथ-पाँव न मारे तो फिर दीवानगी क्या ? इसलिए जो बन सके इस दीवानगीमे कर ले, फिर अवसर हाथ न आयेगा।

वात तो 'तसलीम'ने भी 'हाली' जैसी कही, परन्तु किस खूबसूरतीसे कही है। 'जोशे-वहशत', 'वयावाँ'के नगीने जड़कर रगे-तगज्जुलमे चार चाँद लगा दिये और 'देख ले' शब्द डालकर रिन्दाना शेर बना दिया और नसीहत देनेकी ज़हमतसे भी साफ वच गये। इसी भावको 'शाद' अज़ीमाबादीने देखिये कितने सलीकेसे पेश किया है—

यह बज़्मे-मै है, याँ कोताह दस्तीमें है महरूमी।
जो बढ़कर खुद उठाले हाथमें, मीना उसीका है॥

शेरका ज़ाहिरा मतलब तो सिर्फ इतना है कि यह शरावखाना है, यहाँ पीछे रहनेमे नुकसान है। यहाँ तो आपा-धापी मची हुई है, जो आगे वढकर प्याला झपट सकता है, वही पी सकता है। मगर रिन्दाना अन्दाज़मे 'शाद'ने इन दो मिसरोमे वोह स्फूर्ति, प्रेरणा और आग भरी है कि जिसका जवाव नही।

'हाली'की गज़लका एक शेर है—

ऐ इश्क ! तूने अक्सर कौमोको खाके छोडा।
जिस घरसे सर उठाया, उसको बिठाके छोड़ा॥

शेर पढते-पढते ऐसा मालूम होता है कि मौलाना 'हाली' ताँगेमे बैठकर कॉलेजोके आगे चक्कर लगा रहे है, और माइक्रोफोनपर वह गज़ल, जिसका एक शेर ऊपर दिया गया है। चीख-चीखकर पढ रहे है और लडके है कि तालियाँ पीट रहे है।

इसी मज़मूनको एक शायर देखिये किस सुरुचिपूर्ण ढगसे पेश करते है—

ऐ इश्क ! देख हम भी है किस दिलके आदमी।
महमाँ वनाके गमको कलेजा खिला दिया॥

इश्क, दिल, गम आदि शब्दोसे शेरमे सोज़ो-गुदाज़ पैदा कर दिया और नासहाना दाग भी नही लगने दिया। अब 'मीर'का

सज़ाको झेलनेवाले यह सोचना है गुनाह।
कोई कुसूर भी तुझसे कभी हुआ कि नहीं॥

हम भी कहाँकी बात कहाँ ले गये। हमे कहना सिर्फ इतना था कि मौ० ज़फरअली का ज़ाहिरा आशय केवल इतना है कि ख़ुदा जिनपर महरबान होता है। ख़ुश होकर उन्हे बलाओमे फँसा देता है। यानी उन्होने ख़ुदाकी आडमे उस हक़ीक़तको उजागर किया है, जो कि हमारे जीवनमे अक्सर घटित होती रहती है। यानी हमारे महरबान, शुभचिन्तक, प्यारे-मीठे ही हमे अक्सर मुसीबतोमे फँसाते रहते है। बकौल किसीके—

दोस्तोंसे हमने वोह सदमे उठाये जानपर।
दिलसे दुश्मनकी अदावतका गिला जाता रहा॥

ज़फरअली और उक्त शायरने एक बातको दो तरीकोसे बयान किया है, और उसमे वे बेहद कामयाब हुए है। मगर तगज्जुलकी चाशनीके बगैर शेरमे शेरियत नही आ पाती। अब ज़रा 'मीर'का रगे-तगज्जुल भी मुलाहिज़ा फरमाये—

जफा उसपै करता है हदसे जियादा।
जिसे यार अहले-वफा जानता है॥

उक्त शेरका लुत्फ स्वानुभवी ही उठा सकते है। पत्नी या प्रेयसीके बिगडने-रूठने, जिद करने या तग करनेपर उससे कहा गया हो कि "जब देखो तुम हमारे सरपर चढी रहती हो, हमे इतना तग न किया करो।" तब उसका तेवर बदलकर कहना—"तुम्हारे सिवा मेरा और है ही कौन, जिसपर मैं झूँझल उतारती फिरूँ? अपनेपर ही तान टूटती है, दूसरा कौन सुनता है?"

'मीर'का शेर पढिये और प्रयत्न कीजिये कि आपका भी कोई ऐसा अपना हो, जो आपपर जफा करना अपना हक समझता हो। तब शायद

आप 'वासित' भोपालीके इस शेरको पढनेके हकदार हो सके—

उस ज़ुल्मपै कुर्बां लाख करम, उस लुत्फपै सदके लाख सितम।
उस दर्दके क़ाबिल हम ठहरे, जिस दर्दके काबिल कोई नही॥

शब्दोके रख-रखावकी यही वह कोमल कला है, जो गज़लको कही-से-कही पहुँचा देती है। मश्के-सुख़नसे गज़ल तो हर कोई कह सकता है। मगर उसमे जान नही डाल सकता। जान डालनेके लिए अपनी जान खपानी पड़ती है। दर्दे-दिलसे परिचित हुए विना दास्ताने-गम बयान नही हो सकती। बकौल 'मीर'—

लज्ज़तसे दर्दकी जो कोई आश्ना नही।
सो लुत्फ क्यो न जमा हो, उनमें मज़ा नही॥

नई गज़ल गोई

वर्त्तमान युगीन गज़लमे कितना अभूतपूर्व सशोधन, परिवर्त्तन एव परिवर्द्धन हुआ है? उसका बाजारी इश्क, हरजाई माशूक, बुलहविस आशिक परिवर्त्तित होकर कितने बुलन्द हो गये है? गजलमे कैसे-कैसे अछूते मज़मूनोका समावेश हुआ है, और गज़लगो शायरोने कैसे-कैसे वेदाग हीरे तराशे है? लगे हाथ एक नज़र उनको भी देखते चलिये।

उद्धरणमे इसी युगके शायरोके शेर दिये जा रहे है, ताकि वर्त्तमान युगीन गज़लगोईकी प्रगतिका सही-सही अन्दाजा लग सके। तुलनाके लिए पुरानी शायरीका उल्लेख करते समय उसी युगके शेर उद्धृत किये जा रहे है, और जहाँ नवीन शायरीमे पुरानी शायरीकी झलक मालूम होती है, वहाँ तुलनाके लिये फुटनोटमे प्राचीन शायरोमे सर्वश्रेष्ठ 'मीर'के अशआर दिये जा रहे है, ताकि पुरानी और नई शायरीकी गति-विधिका ठीक-ठीक आभास मिल सके।

उर्दू-गज़लमे हरजाई एव बाज़ारी माशूकका तसव्वुर दरबारी-वाता-

वरण, तत्कालीन वेश्यासक्तिकी आम प्रथा और फारसी-शायरीके अन्ध अनुकरणके कारण आया। यदि तत्कालीन गज़लगो शायर हिन्दी-कविता-

पाक इश्क़

का अनुसरण करना अपनी शानके खिलाफ़ समझते थे, अथवा हिन्दीसे अनभिज्ञ होनेके कारण उसके गुणोसे परिचित नही थे, तो भी यदि वे फारसीके बजाय अरबी-शायरीका अनुकरण करते तो उर्दू-शायरी पाक इश्कसे मालामाल हुई होती।

अरबी-शायरीका इश्क भी इन्सानी इश्क है, किन्तु वह कामुकता एव वासनाके दोषसे मुक्त है। प्रेमी-प्रेमिका एकान्तमे बैठे हुए है, किसीकी दृष्टि पडनेका भी उन्हे खटका नही है, परन्तु क्या मजाल कि दोनोमे-से किसीके हृदयमे भी काम-वासना निहित हो। दोनो प्रेम-विभोर हुए बैठे है। यह बात प्रसिद्ध है कि एक बार ऐसे ही अवसरपर किसी प्रेमीने अपनी कामवासना व्यक्त की तो प्रेमिका क्रुद्ध होकर बोली—"क्या इसी लिए तुम मुझसे प्रेम करते थे ?" प्रेमिकाके यह शब्द सुनकर प्रेमी गद्-गद् हो गया। उसे अपने भाग्यपर अभिमान हुआ कि उसे इतनी पवित्र और सुशीला नारीसे प्रेम करनेका सौभाग्य प्राप्त हो सका। फिर उसने अपनी प्रेयसीपर वास्तविक बात प्रगट कर दी कि उसने परीक्षास्वरूप ऐसा प्रस्ताव किया था। यदि तनिक भी स्वीकृतिका सकेत मिला होता तो उसे महान् क्लेश पहुँचता और यह खजर उसने सीनेमे उतार लिया होता।[1]

प्रेयसीसे शादी करना या वासना तृप्त करना, प्रेम नही, प्रेमका शव पीटना है, कामुकताको प्रेम कहना शैतानको खुदा कहना है—

आरज़ू— हविसकार[2] आशिक भी ऐसा है जैसे—
वोह बन्दा कि रख ले ख़ुदा नाम अपना॥

---

[1]मज़ामीन पृ० २६, [2]कामुक।

बिना किसी वासना या स्वार्थके प्रेममे आठो पहर भीगा रहे, वही प्रेम शुद्ध प्रेम है—

असर— इश्क है इक निशाते-बेपायाँ[1]।
शर्त यह है कि आरज़ू[2] न रहे॥

आसी— आशिकीमें है महवियत[3] दरकार।
राहते-वस्ल[4]-ओ-रंजे-फुरकत[5] क्या॥

जिगर— वोह भी है इक मुकामे-इश्क जहाँ—
हर तमन्ना[6] गुनाह[7] होती है॥

असर— मज़ाके इश्क हो कामिल तो सूरते-शबनम[8]।
कनारे-गुलमें रहे और पाकबाज़[9] रहे॥

आरज़ू— दरयूज़ागरे-हिर्स[10] न बन राहे-तलबमें[11]।
दिल इश्कसे खाली है तो कासा[12] है गदाका[13]॥

उम्मीद— अरे सूदो-ज़ियाँ[14] देखा नही जाता मुहब्बतमें।
यह सौदा और सौदा है यह दुनिया और दुनिया है॥*

---

*मीर— चाहतका इज़हार[1] किया सो अपना काम खराब किया।
इस परदेके उठ जानेसे उसको हमसे हिजाब[2] हुआ॥

[1]स्थाई सुख; [2]अभिलाषा, वासना, [3]तन्मयता; [4]मिलन-सुख; [5]विरह-दुःख; [6]इच्छा; [7]अपराध, [8]ओसकी तरह; [9]फूलपर रहती हुई भी अछूती—अलग—रहती है, [10]तृष्णाके कारण दर-दरका भिखारी, [11]अभिलाषाओके मार्गमे, [12-13]भिक्षुकका पात्र; [14]लाभ-हानि।

---

[1]इच्छा प्रकट की; [2]लाज, संकोच।

वोह युग समाप्त हुआ, जब इश्कको बवाले-जान समझकर उससे बचनेकी ताकीद की जाती थी—

वसीयत 'मीर'ने मुझको यही की।
"कि सब कुछ होना तू आशिक न होना" ॥

अब तो बगैर इश्क इन्सान, इन्सान नही बन पाता—

असर— इन्सानको बेइश्क सलीक़ा नही आता।
जीना तो बड़ी चीज़ है, मरना नही आता ॥

राधेनाथ कौल—इश्क जन्नत है आदमीके लिए।
इश्क नेमत है आदमीके लिए ॥*

प्रेम-विभोर प्रेमीको प्रेमका मार्ग बतानेके लिए पथ-प्रदर्शककी आवश्यकता नही—

दिल— रहनुमाकी[1] क्या जरूरत इश्क कामिल[2] चाहिए।
दिल जहाँ तड़पे समझ लेना वही है कूए-दोस्त[3]॥

सच्चा प्रेमी घुट-घुटके मर जायगा, किन्तु कोई भी इच्छा ऐसी व्यक्त नही करेगा, जो उसकी प्रेयसीको अरुचिकर हो—

---

[1]पथ-प्रदर्शककी; [2]पूर्ण; [3]प्रेयसीका स्थान,

*मीर— क्या हकीकत कहूँ कि क्या है इश्क।
हकशनासोंका[1] हाँ ख़ुदा है इश्क ॥
इश्कसे जा[2] नहीं कोई ख़ाली।
दिलसे ले अर्शतक[3] भरा है इश्क ॥

---

[1]इन्साफ पसन्दोका, सत्यवादियोका, [2]स्थान; [3]आकाशतक।

आरज़ू— ऐसी हसरत[1] ही से बाज आना है ख़ूब।
जो मुझे मरगूब[2] उनको नापसन्द ॥

जिगर—शौकका मर्सिया न पढ़, इश्ककी बेबसी न देख।
उसकी ख़ुशी, ख़ुशी समझ, अपनी ख़ुशी, ख़ुशी न देख ॥

अर्शी— जब उन्हे अर्जे-अलमपर[3] मुज़तरिब[4] पाता हूँ मैं।
जो न पीनेके हैं आँसू वोह भी पी जाता हूँ मैं ॥

लुत्फी रिज़वाई—नज़र किसीकी नदामतसे[5] क्या झुकी 'लुत्फी'!
कि याद मुझको ख़ुद अपने ही सब कुसूर आये ॥

यदि प्रेमीके किसी बर्तावसे प्रेयसीके हृदयको ठेस पहुँचे या उसकी आँखोसे आँसू आ जाये तो यह उसका अपराध क्षमा योग्य नही—

जिगर— हश्रके दिन वोह गुनहगार न बख़्शा जाये।
जिसने देखा तेरी आँखोका पशेमाँ[6] होना ॥

प्रेमी मन ही मनमे घुटता रहता है, परन्तु मनकी बात मुँहपर इस भयसे नही लाता कि कही उसकी प्रेयसीकी प्रतिष्ठामे बाल न आ जाये—

ख़ुर्शीद फ़रीदाबादी—आ जाये न उनकी निगहे-मस्तपै इल्जाम।
ऐ दोस्त! न कर तज़करि-ए-गर्दिशे-ऐयाम[7] ॥*

---

[1]इच्छासे, [2]रुचिकर, [3]अपनी व्यथाओके प्रकट करनेपर; [4]बेचैन, [5]शर्मिन्दगीसे, [6]शर्मिन्दा; [7]मुसीबतोका वर्णन।

*मीर— गिला लबतक न आया 'मीर' हरगिज।
खपा जी ही में ग़म सारा हमारा ॥
तुरबतसे आशिकोंकी न उट्ठा कभी गुबार।
जीसे गये वले[1] न गईं राज़दारियाँ[2] ॥

---

[1]लेकिन, [2]भेदकी बाते किसीको न बताईं।

जलील— दैरो-काबेकी जियारत[1] तो फ़क़त हीला[2] है।
जुस्तजू[3] तेरी लिये फिरती है घर-घर मुझको ॥

यगाना— मंज़िलकी फिक्र क्यो हो, जब तू हो और मैं हूँ।
पीछे न फिरके देखूँ, काबा भी हो तो क्या है ॥

माहिर— हम भी जरूर काबेको चलते पर अब तो शेख़ !
किस्मतसे बुतकदेमें ही दीदार हो गया ॥

असग़र— ✓ हम एक बार जलवये-जानाँना[4] देखते।
फिर काबा देखते न, सनमख़ाना देखते ॥*

'असगर' तो अपने हबीबकी तलाशमे इतने लीन है कि उसे खोजनकी धुनमे वे मन्दिरो-मसजिदोकी ओर भी नही देखते। उन्हे अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमे बाधा समझते है—

✓ दैरो-हरम[5] भी कूचये-जानाँमें[6] आये थे।
पर शुक्र है कि बढ़ गये दामन बचाके हम ॥

जिन्हे कूचये-महबूब नसीब हो गया है, उनकी किस्मतका क्या कहना ? कूचये-जानाँके सामने फिरदौस (जन्नत, स्वर्ग)की भी क्या हकीकत ?

---

[1]यात्रा, दर्शन करना; [2]बहाना; [3]तलाश, खोज, [4]प्रेयसीका रूप, [5]मन्दिर,मसजिद, [6]प्रेयसीके स्थानतक पहुँचनेके मार्गमे।

*मीर— हजार मर्तबा बेहतर है बादशाहीसे।
अगर नसीब तेरे कूचेकी गदाई हो ॥
रहनेकी अपनी जा तो, न दैर है न काबा।
उठिये जो उसके दरसे तो हूजिये किधरके ?
देखा करूँ तुझीको, मंजूर है तो यह है।
आँखें न खोलूँ तुझ बिन मक़दूर है तो यह है ॥

हसरत मोहानी—वल्लाह तुझे छोडके ऐ कूचये-जानाँ !
'हसरत'से तो फिरदौसमें जाया नही जाता ॥*

बेनज़ीरशाह— वोह तेरी गलीकी कयामतें कि लहदसे[1] मुर्दे निकल गये।
वोह मेरी जबीने-नियाज[2] थी कि वही धरी-की-धरी रही ॥

महबूबका मर्तबा खुदासे कम नही, बकौल किसीके—

दावरके[3] सामने बुते-काफिरको क्या कहूँ ?
दोनोकी शक्ल एक है, किसको ख़ुदा कहूँ ॥

और 'वहज़ाद' लखनवी तो महबूबको ही ख़ुदा समझते हैं—

---

[1]कब्रसे, [2]नतमस्तक; [3]ख़ुदाके।

*मीर— फिरदौसको[1] भी आँख उठा देखते नही।
किस दरजा सैरे-चश्म[2] हैं कूए-बुताँसे हम ?
जन्नतकी मिन्नत उनके दमागोसे कब उठें ?
ख़ाके-रह[3] उसको, जिसके कफनका अबीर हो ॥
फ़रो[4] न आये सर उसका तवाफे-काबासे[5]।
नसीब जिसको तेरे दरकी जिबहसाई[6] हो ॥
किसको कहते हैं, नही मैं जानता इसलामो-कुफ़्र।
दैर हो या काबा, मतलब मुझको तेरे दरसे है ॥

बैठने दे है कौन फिर उसको ?
जो तेरे आस्ताँसे उठता है ॥
यूँ उठे उस गलीसे हम—
जैसे कोई जहाँसे उठता है ॥

---

[1]जन्नत्को, [2]तृप्त, [3]मार्ग-रज, [4]नीचे, [5]काबेकी प्रदक्षिणासे; [6]मस्तक रगड़ना।

आ मेरी कायनाते-दिल![1] मेरी बहारे-जिन्दगी !
आ कि मैं यह न कह सकूँ "मुझको खुदा न मिल सका" ॥

अपने प्यारेके ध्यानमे दिन-रात लीन रहना ही प्रेम-धर्म है—

हसरत मोहानी—शब[2] वही शब है, दिन वही दिन है।
जो तेरी यादमे गुज़र जाये ॥

आसी— जिनमें चर्चा न कुछ तुम्हारा हो।
ऐसे अहबाब[3] ऐसी सुहबत क्या ?*

अपने प्यारेके चिन्तन और स्मरणके अतिरिक्त प्रेमीको अन्य कुछ भी नही सुहाता—

हसरत— हम क्या करें अगर न तेरी आरज़ू करें !
दुनियामें और कोई भी तेरे सिवा है क्या ?

---

[1]दिलकी दुनिया; [2]रात, [3]इष्ट-मित्र ।

*मीर— गई तसबीह[1] उसकी नज़अमें[2] कब 'मीर'के दिलसे ?
उसीके नामकी सुमरन थी, जब मनका ढलकता था ॥
हर सुबह उठके तुझसे माँगूँ हूँ मैं तुझीको।
तेरे सिवाय मेरा कुछ मुद्दआ नही है ॥
रहते हो तुम आँखोंमें, फिरते हो तुम्हीं दिलमें।
मुद्दतसे अगर्चे याँ, आते हो न जाते हो ॥
हमनशीं[3] ! क्या कहूँ, उस रश्के-महे-ताबाँ[4] बिन।
सुबहे-ईद अपनी है, बदतर शबे-मातमसे भी ॥

---

[1]माला, सुमरन; [2]प्राणान्त समयमे, [3]पड़ोसी, [4]जिसके सौन्दर्य्य-पर चन्द्रमाको भी ईर्ष्या हो ।

जलील— मुझे तमाम जमानेकी आरजू क्यों हो ?
बहुत है मेरे लिए एक आरजू तेरी ॥

फानी— एक आलमको देखता हूँ मैं।
यह तेरा ध्यान है मुजस्सिम[1] क्या ॥

जिगर मुरादाबादी—
यूँ जिन्दगी गुजार रहा हूँ तेरे बगैर।
जैसे कोई गुनाह किये जा रहा हूँ मैं ॥

जिगर बरेलवी— तुम नहीं पास कोई पास नही।
अब मुझे जिन्दगीकी आस नहीं ॥

दिल— नजरका इक इशारा चाहिए अहले-मुहब्बतको।
जबीने-शौक झुक जाये जिधर कहिये, जहाँ कहिये ॥

प्रेयसीके रूप, हाव-भाव (जमाल)का वर्णन करना बहुत ही नाजुक एवं कोमल कला है। तनिक-सी असावधानीसे अश्लीलताके धब्बे उभर आते हैं। ऐसा कौन विवेक-हीन कलाकार होगा, जो अपनी प्रियतमाके गुप्तागोंका चित्रण करे। लेकिन गज़लगो शायर ऐसा करते रहे हैं। पिछले वक़्तोंके बाज़-बाज़ शायरोंने तो अपनी कामुक मनोवृत्तिका बहुत ही कुरुचिपूर्ण परिचय दिया है। कई स्थलोपर तो ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने अपनी प्रियतमाको नग्न करके चौराहेपर खड़ा कर दिया है—

महबूबका जमाल

निजाम रामपुरी— वोह जानुओंमें सीना छुपाना सिमटके, हाय !
और फिर सम्भालना वोह दुपट्टा, छुड़ाके हाय ॥

---

[1]पूर्णरूपेण।

दिल— मुहब्बत बेअसर उसकी, मुहब्बत रायगाँ उसकी।
कि जिसने उम्रभर पूछे हैं आँसू अपने दामाँसे ॥

रजो-ग़ममें रोने-धोनेके क्या मानी ? मर्द वह है जो इनका हँसते हुए स्वागत करता है। चन्द नमूने मुलाहिज़ा फ़रमायें—

साकिब— जवाब ज़ख़्मे-जिगर दे रहा है हँस-हँसकर।
"वही तो दिल है कि जो ख़ुश रहे मुसीबतमें" ॥

रियाज़— असर बढ़ जाय या रब ! इस क़दर सोज़े-मुहब्बतमें।
जहन्नुममें हर अंगारेको समझूँ फूल जन्नत का ॥

असर— ग़म नहीं तो लज़्ज़ते-शादी नहीं।
बे असीरी[1] लुत्फ़े-आज़ादी नहीं ॥

फ़ानी— ज़िन्दगी यादे-दोस्त है, यानी—
ज़िन्दगी है तो ग़ममें गुज़रेगी ॥

मौजोंकी सयासतसे[2] मायूस[3] न हो 'फ़ानी'।
गिरदाबकी[4] हर तहमें साहिल[5] नज़र आता है ॥

रस्मे-बेदाद-दोस्त[6] आम हुई।
तल्ख़िये-ज़ीस्त[7] भी हराम हुई ॥

यगाना चंगेज़ी— ज़ीस्तके हैं यही मज़े वल्लाह।
चार दिन शाद[8] चार दिन नाशाद ॥

---

[1]बन्धनके दुःख देखे बिना, [2]लहरोंके बढ़नेसे, वेगसे, [3]निराश; [4]भँवरकी; [5]तट, किनारा, [6]प्रियतमाके अत्याचार करनेकी प्रथा; [7]ज़िन्दगीकी कड़ुवाहट, [8]ख़ुश।

शाद— अपनी हस्तीको ग़मो-दर्द मुसीबत समझो।
मौतकी क़ैद लगा दी है ग़नीमत समझो॥

पुकारकर वहशियोसे कह दो, "ख़िज़ाँका भी दौर है ग़नीमत।
कबाके दामनको ढाँक तो लें अगर न मौका मिले रफ़ूका"॥

आजाद अन्सारी— गैर फानी ख़ुशी अता कर दी।
ऐ गमे-दोस्त ! तेरी उम्र दराज॥

फ़ानी— तूने करम किया तो ब-उनवाने-रजे-ज़ीस्त !
ग़म भी मुझे दिया तो गमे-जाविदाँ न था॥
ग़म भी गुज़श्तनी है, ख़ुशी भी गुज़श्तनी।
कर गमको अख्तियार कि गुजरे तो गम न हो॥
मेरी हविसको ऐशे-दो आलम भी था कबूल।
तेरा करम कि तूने दिया दिल दुःखा हुआ॥

आरज़ू— एक दिलमें गम ज़माने भरका क्योंकर भर दिया ?
ख़ू-ए-हमदर्दीने[1] कूज़ेमें समन्दर[2] भर दिया॥

दिल— ऐ दिले-नाकाम रफ़-ए-गमकी सूरत है यही।
वाकियाते-जिन्दगीको भूल जाना चाहिए॥

अर्शी— जब कभी दर्दे-मुहब्बतमें कमी पाई है।
अपनी हालतपै मुझे आप हँसी आई है॥

मुहम्मद 'असर'—हज़ार ऐशकी सुबहें निसार है जिसपर।
मेरी हयातमें[3] ऐसी भी इक शबे-ग़म[4] है॥

---

[1]विश्व-समवेदनाकी आदतने, [2]गागरमे सागर; [3]जीवनमे; [4]दुःखकी रात।

ख़िज़ाँ प्रेमी—ग़म एक इम्तहान था इन्सानके लिए।
जो लोग अहले-ज़ौक़ थे, वोह मुसकरा दिये॥

दर्द नईदी—

यह क्यों फ़िज़ापर[1] है यासतारी,[2] यह हर तरफ़ क्यों उदासियाँ हैं ?
अभी तो अपनी तबाहियोंपर मैं आप भी मुसकरा रहा हूँ॥

नाज़िश परतापगढ़ी—

वोह तो ख़ैरियत गुज़री जो ग़मने गोद फैला दी।
वरना हज़रते-'नाज़िश' कौन आपका होता ?
यह लुटा-लुटा-सा आलम, यह उड़ी-उड़ी-सी रंगत।
कहीं छिन न जाय मुझसे मेरे ग़मकी ताज़गी भी॥
मेरे दर्दमें निहाँ[3] है, वोह निशाते-जाँविदानी[4]।
कि निचोड़ दूँ जो आहें तो टपक पड़े तबस्सुम॥

राज़ रामपुरी—

इन आँसुओंकी हक़ीक़तको कौन समझेगा।
कि जिनमें मौत नहीं, ज़िन्दगीका मातम है॥

हुरमतुल इकराम—

मुझसे हर बार मसर्रतने छुड़ाया दामन।
मुझको सौ बार दिया ग़मने सहारा ऐ दोस्त !

अज्ञात—

किसको होती है अता इस शानकी बरबादियाँ।
आशियाँ हम क्या बचाते, बिजलियाँ देखा किये॥

---

[1]वायुमण्डलमें, [2]निराशा छाई है; [3]छुपी हुई, [4]स्थाई सुख।

पिछले ज़मानेके अक्सर शायरोंने जहाँ माशूकको कातिल एवं बेवफा[1] चित्रण किया है; वहाँ आशिकको भी बहुत ज्यादा जलीलो-ख्वार किया है।[2] यहाँतक कि आशिको-माशूक शब्द इतने घृणित और उपहास्पद हो गये हैं कि यह भनक पडते ही कि अमुक युवक-युवतीका परस्पर इश्क है तो भद्रसमाजमे उनपर उँगलियाँ उठने लगती है, चेमेगोइयाँ होने लगती है, और उन्हे आवारा, उच्छृङ्खल एव चरित्रहीन समझ लिया जाता है। यहॉतक कि कुटुम्बी जन उनके अस्तित्वको अभिशाप समझने लगते हैं।

आशिक़-ओ-माशूककी तसवीर

अब जब कि हुस्नो-इश्कका मर्तबा बहुत बुलन्द तसव्वुर किया जाने लगा है तो आशिको-माशूककी तसवीरे भी उसी मेयारपर बनाई जा रही है। पिछले ज़मानेके माशूक विरह-व्यथासे पीडित अपने आशिककी

१— दाग़— अपने बिस्मिलका सर है ज़ानूपर।
किस मुहब्बतसे जान लेते हैं॥

मोमिन—दरबाँको आने देनेपै मेरे न कीजे कत्ल।
वरना कहेगे सब कि यह कूचा हरम न था॥

२— ग़ालिब—दे वोह जिस कदर ज़िल्लत हम हँसीमें टालेगे।
बारे-आश्ना निकला उनका पासबाँ अपना॥

वाँ जो पहुँचा भी तो उनकी गालियोंका क्या जवाब।
याद थी जितनी दुआएँ सर्फ़-दरबाँ हो गईं॥

दाग़— देखते ही मुझे महफिलमें उन्हें ताब कहाँ?
खुद खड़े हो गये कहते हुए "बाहर-बाहर"॥

अज्ञात— कल जो उठते थे बिठानेके लिए।
आज बैठे हैं उठानेके लिए॥

परिचर्य्या करना तो दरकिनार उनकी मिजाज पुर्सीको आना भी शायाने-शान नही समझते थे।

तसलीम— गर उन्हें है ख़ौफ अर्ज़े-आरज़ू।
दूरसे आकर तमाशा देख लें॥

लेकिन इश्क अगर सादिक है तो नामुमकिन है कि माशूकको उस चाहतका पता न लगे और आशिकके रजो-गममे उसकी आँखे न डबडबा आये—

साकिब— नज़अ् इक ईद है, वोह रोते हुए आये हैं।
ऐ दिले-ज़ार! यही वक़्त है मर जानेका॥

अर्शी— अब देखिये पहुँचती है बरबादियाँ कहाँ?
उनकी हसीन आँखोमें अश्क आ गये है आज॥

अज्ञात— तेरी आँखोसे यह आँसूका ढलकना तौबा!
मैंने गिरती हुई कोनैनकी किस्मत देखी॥

वर्तमान युगीन शायर जहाँ सुशीला, सहृदया और नेक प्रेयसीका चित्रण कर रहे है; वहाँ प्रेमीके बेलौस प्रेम और स्वाभिमानी व्यक्तित्वका भी नक्श उभार रहे है। यह माना कि प्रियतमा ही काबा-ओ-काशी है। उसकी यादमे लीन रहना ही नमाजो-उपासना है। मगर प्रेमी भी तो आखिर मनुष्य है। वह प्रियतमाकी चाहतमे मर मिटेगा, जीवनभर सुलगता रहेगा, किन्तु जानबूझकर की गई उपेक्षा या तौहीनको वह नही सह सकेगा। वह मनुष्य है और मनुष्यताका अपमान सहन करना मनुष्यता नही पशुता है। इस हीन स्थितिमे वह किसी भी कीमतमे रहनेको प्रस्तुत नही।

आनन्दनारायण मुल्ला—

तूने फेरी लाख नरमीसे नजर।
दिलके आईनेमें बाल आ ही गया॥*
किसीके पाँवका रौदा हुआ नही 'मुल्ला'।
वोह है तो गर्द, मगर राहे-कारवाँमें नही॥

शाद अजीमाबादी—

दिले-मुजतरिब! तुझे क्या कहूँ, अबस उनके पाँवपै सर रखा।
जो खफ़ा भी हो गये थे तो क्या, कि वोह आदमी थे, ख़ुदा न थे॥†

जिगर— हमसे नजर फेर ली उस शोख़ने।
हम भी है इन्सान ख़फ़ा हो गये॥*

फ़ानी— रस्मे-ख़ुद्दारीसे गो वाकिफ न थी दुनियाए-इश्क।
फिर भी अपना जख्मे-दिल शरमिन्द-ए-मरहम न था॥

आरज़ू— उनकी बेजा भी सुनूँ आप बजा भी न कहूँ।
आखिर इन्सान हूँ मैं भी, कोई दीवार नही॥

---

*मीर— याँ अपने जिस्मे-जारपै तलवार-सी लगी।
उसने जो बेदमागीसे अबरूको खम किया॥

†मीर— खाक ऐसी आशिकीपर ठुकराये भी गये कल।
पावों कने-से उसके पर 'मीरजी' न सरके॥

*मीर— बाहम सलूक था तो उठाते थे नर्म-गर्म।
काहेको 'मीर' कोई दबे जब बिगड़ गई॥
खाना खराब 'मीर' भी कितना गयूर था?
मरते मुआ पर उसके कभू घर न जा फिरा॥

यगाना— बन्दगीका सबूत दूँ क्योंकर ?
इससे बेहतर है कीजिये इनकार ॥

जब स्वाभिमानका यह आलम है कि बन्दगीका सबूत चाहे जानेपर बन्दगीसे भी इनकार कर दिया जाता है। तब उसका स्वाभिमानी व्यक्तित्व किसीका भी अहसान कैसे उठाये और क्यों किसीसे याचना करे ?

साकिब— पेशे-अरबाबे-करम हाथ वोह क्या फैलाता ?
जिसको तिनकेका भी अहसान गवारा न हुआ ॥*

नियाज़— हमें ख़ुदाके सिवा कुछ नज़र नहीं आता।
निकल गये हैं बहुत दूर जुस्तजूसे हम ॥

असर— रहमपर गैरके जीना कैसा ?
जिन्दगीका यह करीना कैसा ?

आरज़ू— दरे-दिल[1]"आरज़ू'! दरवाज़-ए-काबेसे बेहतर था।
यह ओ ग़फलतके मारे! तूने पेशानी कहाँ रख दी ?
धूप सह लेना है अच्छा, बारे-अहसाँ[2] कौन उठाय।
छाँव इक गिरती हुई दीवार है मेरे लिए ॥
माँग जो खोके आन-बान न माँग।
क़त्ल हो जा मगर अमान[3] न माँग ॥
आलूदगी-ए-गर्दे-तमा से[4] ख़ुदा बचाय।
जाते हैं झाड़ते हुए दामन चमनसे हम ॥

---

*मीर— आगे किसीके क्या करें दस्ते-तमअ़ दराज़।
यह हाथ सो गया है सिरहाने धरे-धरे ॥

[1]हृदय-द्वार, [2]अहसानका बोझ, [3]जीवन-रक्षा, [4]अभिलाषा-रूपी धूलकी लिप्सासे।

यगाना—

आँख नीची हुई अरे यह क्या ?
क्यों गरज दरमियानमें आई ?
बन्दा वोह जो दम न मारे।
प्यासा खड़ा हो दरिया किनारे॥

अदीब मालीगाँवी—

अपना अदाशनास बन, अपना जमाल भी तो देख।
तुझमें कमी है कौन-सी, तुझमें कमी कोई नही॥

कौसर कुरेंसी—मुझे आता है 'कौसर' हश्रगाहोंमें गुजर जाना।
मैं इन्साँ हूँ, मेरी तौहीन है, घुट-घुटके मर जाना॥

हिज्रे-यार

अपने प्यारेका विरह नारकीय यन्त्रणासे भी अधिक दुखद होता है। हर प्रेमीकी अभिलाषा रहती है कि वह अपने प्यारेके पास निरन्तर बैठा रहे, एक क्षणको भी पृथक न रहे; परन्तु विधिका विधान ही कुछ ऐसा है कि वियोग ही जीवनभर सहना पडता है, मिलन यदि होता भी है तो क्षणिक होता है। पिछले शायरोमे बहुतोने विरहपर बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण कहा है। जिसे सुनकर सहानुभूति उदित होनेके बजाय खीज-सी होती है। कोई विरह-व्यथा सहते-सहते इतने दुर्बल हो गये है कि बकौल किसीके—

बिस्तरपै ढूँढ़ती फिरी शबभर क़ज़ा मुझे

कोई विरह-ज्वालामे इतने तप रहे है कि बकौल 'अमीर' मीनाई—

फूल गर मुरझाये तो मुझसे न करना कुछ गिला।
ले सबा चलनेको मैं, चलता हूँ गुलशनकी तरफ॥

कोई विरह-व्यथामे ऐसे खोये गये है कि जड़-मूर्त्ति समझकर परिन्दोंने उनके सरपर घोसले बना लिये है। बकौल आरिफ—

जानकर मजनूँ मुझे एक लैलि-ए-गुलफामका।
आके बुलबुलने बनाया आशियाँ बालाए-सर॥

अब आधुनिक युगके चन्द स्वाभाविक शेर विरहपर दिये जा रहे है—

अर्शी— बेताबिये-दिलके उन नाजुक लमहोंका तसव्वुर तो कीजे।
जब अहदे-मुहब्बत होते ही फ़ुरकतका जमाना आ जाये॥

असर—
फिर न आये जो वादा करके गये।
आजका दिन है और वोह दिन है॥
याद कर ले भूलनेवाले मेरे।
अब तो बिछुड़े एक मुद्दत हो गई॥

जलील—
तुम जो याद आये तो सारी कायनात[1]।
एक भूली-सी कहानी हो गई॥
क़ासिद! पयामे-शौकको देना न बहुत तूल।
कहना फकत यह उनसे कि "आँखें तरस गईं"॥

'शाद' अज़ीमाबादी—

शबे-हिजराँकी सख़्ती हो तो हो, लेकिन यह क्या कम है।
कि लबपै रातभर रह-रहके तेरा नाम आयेगा॥

हसरत— कहीं वोह आके मिटा दें न इन्तजारका लुत्फ़।
कहीं कुबूल न हो जाय इल्तजा[2] मेरी॥

नसरीं— वाह क्या कैफ़े-तसव्वुर[3] है कि अक्सर हिज्रमें।
यूँ हुआ महसूस गोया वोह अचानक आ गये॥

---

[1]दुनिया, [2]इच्छा, प्रार्थना, [3]ध्यानावस्था।

अज्ञात— रुखसतके वाक़ियातका इतना तो होश है।
देखा किये हम उनको जहाँ तक नजर गई॥
दरतक तो आ चुके थे, मगर आके फिर गये।
ऐ ज़ब्ते-दिल ! असरमें कहाँपर कमी रही॥

अदीब मालीगाँवी—
उस जाने-बहाराँने[1] जबसे मुँह फेर लिया है गुलशनसे।
शाख़ोंने लचकना छोड़ दिया, गुंचे भी चटख़ना भूल गये॥

एक ख़ातून— वे तुम्हारे में जी गई अबतक।
तुमको क्या ख़ुद मुझे यकीन नहीं॥*

अर्शी— तेरी नीची नज़रकी यादका आलम अरे तौबा !
चुभोकर दिलमें जैसे तोड़ डाले कोई पैकाँको[2]॥
आगाज़े-आशिकीका[3] अल्लाहरे ज़माना।
हर बात बहकी-बहकी हरगाम वालहाना॥

पुरानी गजलोमे निराशा एवं असफलता (यास-ओ-हिरमान)की बहुत अधिक भरमार है। वे शायर भी जो जीवन पर्यन्त ऐश करते रहे, ता-उम्र निराशाके गीत गाते रहे हैं। अक्सर पुराने शायरोने जीवनके बजाय मृत्यु चाही।† प्राय सभीने पुरुषार्थके बदले अकर्मण्यताको अहमियत

यास-ओ-हिरमान

[1]बहाररूपी प्रियतमाने, [2]तीरको, [3]प्रेमासक्तिका प्रारम्भ।

*मीर— इश्कमे वस्लो-जुदाईसे नही कुछ गुफ़्तगू।
कुर्बो-बाद[1] उस जा बराबर है, मुहब्बत चाहिए॥

†—गालिब— मरते हैं आरज़ूमें मरनेकी।
मौत आती है, पर नहीं आती॥

[1]नज़दीकी-दूरी।

दी।† लेकिन अब करो या मरोका युग है। अकर्मण्योको सावधान करते हुए 'यगाना' चगेजी फरमाते हैं—

ख़ुदा ऐसे बन्दोंसे क्यों फिर न जाये।
जो बैठा हुआ माँगना जानता है॥

जो हाथ-पाँव नही हिलाता, उसके मुँहमे ग्रास देने ईश्वर भी नही आता। जो पुरुषार्थ करते है, उन्हे सहायक मिल ही जाते है। इसी भावको 'यगाना' चगेजी यूँ व्यक्त करते है—

जो रो सकते तो आँसू पूछनेवाले भी मिल जाते।
शरीके-रंजो-ग़म, दामनसे पहिले आस्ती होती॥

जो व्यक्ति असफलताओसे निराश हो बैठते है, उनके लिए यह अशआर देखिये कितने प्रेरणादायक हैं—

शाद अज़ीमाबादी—
यह मुमकिन है कि लिक्खी हो कलमने फतह आख़िरमें।
जो हैं अहबाबे-हिम्मत गम नहीं करते शिकस्तोंमें॥

दत्तात्रिय कैफ़ी—हाँ-हाँ मगर ऐ दोस्त ! तू तद्बीर किये जा।
यह भी तेरी तकदीरके दफ़्तरमें लिखा है॥

जो स्वय नही उठता, उसे कोई भी सहारा नही देता। इसी भावको 'शाद' अज़ीमाबादी देखिये किस ख़ूबीसे रिन्दाना अन्दाज़मे पेश करते हैं—

समझता है इस दौरमें कौन किसको ?
करें रिन्द ख़ुद अहतराम[1] अपना-अपना॥

---

† आतिश—किस्मतमें जो लिखा है, वोह आयेगा आपसे।
फैलाइये न हाथ न दामन पसारिये॥

[1]आदर-सत्कार।

जो कौमे स्वय अपनी प्रतिष्ठाये बढानेका प्रयत्न नही करती, उनकी आजतक किसी दूसरी कौमने इज्जत नही की। 'शाद' अजीमाबादीने कितना तथ्यपूर्ण भेद बतलाया है—

यह बज़्मे-मैं[1] हे याँ कोताहदस्तीमें है महरूमी[2]।
जो बढ़कर ख़ुद उठा ले हाथमें मीना उसीका है॥

समय रहते जो कर लिया सो ही थोडा—

क्या ग़लत जोम है, बाद अपने किसे गम अपना।
हाथ क़ाबूमें है कर ले अभी मातम अपना॥

यह हमारी कम हिम्मती अथवा अकर्मण्यता है जो हम इस शोचनीय स्थितिमे है। अन्यथा बकौल 'शाद' अजीमाबादी—

हिम्मते-कोताहसे[3] दिल, तगे-जिन्दाँ[4] बन गया।
वरना था घरसे सिवा, इस घरका हर गोशा[5] वसीअ्[6]॥

सफी लखनवी—इन्सान मुसीबतमें हिम्मत न अगर हारे।
आसाँसे वोह आसाँ है, मुश्किलसे जो मुश्किल है॥
दुनियाकी तरक़्क़ी है इस राज़से[7] वाबिस्ता[8]।
इन्सानके कब्ज़ेमें सब कुछ है अगर दिल है॥

असर लखनवी—कौन कहता है कि मौत अंजाम[9] होना चाहिए।
जिन्दगीका जिन्दगी पैग़ाम होना चाहिए॥

नजीर बनारसी—खा-खाके शिकस्त फतह पाना सीखो।
गिरदाबमें[10] कह-कहा लगाना सीखो॥

---

[1]मधुशाला; [2]पीछे हाथ रखनेसे वचित रह जाओगे, [3]कम-हिम्मतीकी वजहसे दिल; [4]सकीर्ण वन्दीगृह, [5]कोना; [6]विस्तृत; [7]भेदसे; [8]सम्बन्धित, [9]परिणाम, [10]भँवरमे।

शाद अज़ीमाबादी—नज़र आये न आये कोई आँसू पूछनेवाला।
मेरे रोनेकी दाद ऐ बेकसी ! दीवारो-दर देंगे ॥

आनन्दनारायण मुल्ला—कबतक किसीसे माँगकर हम अख़्तियार लें ?
अब जीमें है कि शेरसे लड़कर कछार लें ॥

रकाबत

पुरानी शायरीमे रकीबो[1] (उदूओ)की बहुत भरमार रही है। अक्सर यही माशूककी नज़रे-इनायतके हकदार होते थे। माशूक इन्हे महफ़िलोमे अपने नजदीक बिठाते थे। सबके सामने प्यार-ओ-मुहब्बतका इजहार करते थे और अपने हक़ीकी चाहनेवाले आशिककी तरफ रुख़ भी नही करते थे। उन्हे महफिलमे बुलाना तो दरकिनार अपने कूचेमे भी नही फटकने देते थे। और मसलहतन कभी महफिलमे बैठने भी दिया तो उनके सामने ही रकीबसे इज़हारे-उल्फत करते थे और बेचारे आशिक उनकी इन हरकतोको देख-देखकर कुढते थे। इसी कुढन, गैरत, जलन, ईर्ष्या, स्पर्द्धा आदिको 'रकाबत' कहते है।

वर्त्तमान युगमे रकाबतकी वह लानत खत्म होती जा रही है। क्योकि जब माशूका पाकदामाँ और बावफा होती जा रही है तब रकीबो-उदूका खयालो-ख्वाब भी नही आ सकता।

पृष्ठ ४६ मे यह उल्लेख हुआ है कि उर्दू-शायरीमे बाजारी माशूकका तसव्वुर फारसी-शायरीके अन्ध-अनुकरणकी वजहसे भी आया। यदि उर्दू-शायरोने फारसीके बजाय अरबीका अनुसरण किया होता तो बुलहविस आशिको एव हरजाई माशूकोसे उर्दू-शायरीका दामन बेदाग रहा होता।

मिर्ज़ा गालिब फारसीका अनुसरण करते हुए फरमाते है—

---

[1] माशूकका दूसरा चाहनेवाला, जिसे माशूक भी प्यार करे, उसे रकीब, उदू, ग़ैर, मुद्दई, दुश्मन आदि कहा जाता है।

कयामत है कि होवे मुद्दईका हमसफर, 'ग़ालिब' !
वोह काफिर जो ख़ुदाको भी न सौंपा जाय है मुझसे[1] ॥

इस शेरमे साफ-साफ हरजाई माशूकका जिक्र हुआ है। 'मीर' अरबी-नस्ल था। अब देखिये उसके यहाँ यही मज़मून कितने पाकीज़ा सलीकेसे नज्म हुआ है—

इश्क उनको है, जो यारको अपने दमे-रफ़्तन।
करते नहीं ग़ैरतसे ख़ुदाके भी हवाले[2] ॥

'मीर'की प्रेयसी पवित्र एव सती है, किन्तु वह इतनी अनुपम, लावण्यवती और यकताँ है कि किसीपर भी विश्वास नही किया जा सकता। उसे देखकर सभव है ख़ुदाकी नीयत भी ऐन-गैन हो जाय।

'मीर'का कमाल यह है कि वह अपनी प्रेयसीको शकित दृष्टिसे नही देखते। मगर उनकी हिन्दुस्तानी गैरत इजाजत नही देती कि उनके सिवा कोई दूसरा उसे मुहब्बतकी नजरसे देखे। चाहे वह ख़ुदा ही क्यो न हो। उन्हे अपनी माशूककी पाक दामनीपर पूरा एतमाद है। मगर दूसरोकी नीयतपर यकीन नही। वे उस पाश्चात्य सभ्यताके कायल नही, जो अपनी पत्नियोको दूसरोके साथ नाचते-हँसते-खेलते देखकर खुश होते हैं। अपनी प्रेयसीपर 'मीर' किसीकी भी कुदृष्टि नही पडने देना चाहते। उनके सिवा कोई और भी उनकी प्रेयसीको चाहतकी दृष्टिसे देखने लगे, यह बेगैरती वे बरदाश्त करनेको तैयार नही।

---

[1] ऐ गालिब ! मेरे लिए तो आज प्रलयका दिन है। मेरे जैसा शकित हृदय अपनी जिस प्रेयसीको खुदाके हवाले करते हुए भी झिझकता, वही मेरे प्रतिद्वन्द्वीके साथ भ्रमणको निकली है।

[2] पवित्र और स्थाई प्रेम उन्हीका है जो स्वाभिमानवश अपनी प्रेयसीको खुदाके सरक्षणमे भी रखनेको प्रस्तुत नही होते। रकीबका तो ज़िक्र ही क्या ?

हम देखें तो देखें उसे, फिर परदा बेहतर है यानी—
और करे नज़्ज़ारा उसका, हमको यह मंज़ूर नहीं ॥

यहाँतक कि 'मीर' अपनी प्रेयसीको पत्र भी नही लिखते। क्योकि वे जानते हैं कि पत्र-वाहककी नीयत भी फिसल सकती है—

ख़त लिखके उसको सादा न कोई मलूल हो।
हम तो हो बदगुमान जो कासिद रसूल हो॥

रकाबतपर 'मोमिन'का यह शेर मशहूर है—

उस नक़्शे-पाके सजदेने क्या-क्या किया ज़लील।
मैं कूच-ए-रकीबमें भी सरके बल गया[1]॥

'मोमिन'के यह बहुत बहतरीन शेरोमे-से एक है। इसी मजमूनको 'ग़ालिब'ने यूँ ज़ाहिर किया है—

जाना पड़ा रकीबके दरपर हज़ार बार।
ऐ काश जानता न तेरी रहगुज़रको मैं॥

'गालिब' कूचये-रकीबमे अपने माशूकके नक्शे-पाका सजदा करते हुए नही जाते हैं। वे तो महज़ बदगुमानी और रकाबतकी वजहसे कूचये-

---

[1]प्रेयसी प्रतिद्वन्द्वीके घर थी। अत. उसके चरणचिह्नोको सजदा करते हुए मुझे प्रतिद्वन्द्वीके घरतक जाना पड़ा। प्रेयसीके चरण-चिह्नोको सजदा देना प्रेम-धर्म है। इससे तो मुझे प्रसन्नता हुई, परन्तु मलाल तो इस बातका है कि मुझे सजदा करते हुए शत्रुके दर्वाज़ेतक जाना पडा। जो मेरी गैरतको गवारा नही था। ज़िल्लतका सबब यह हुआ कि रकीबके कूचेमे सरके बल जानेसे लोग समझे कि रकीबसे रहमका ख्वाहिशमन्द है और उसके कूचेमे नाक रगड़ता है।

रकीबमे जाते है। ताकि वहाँ माशूकको रँगे-हाथ देखकर उसे ज़लीलो-ख्वार कर सके।

मगर किसी भी भले और शरीफ आशिककी गैरत यह कब गवारा करेगी कि वह अपने माशूकको किसी गैरके पहलूमे खुद अपनी आँखोसे देखे। वह मर जाना पसन्द करेगा, मगर ऐसे ज़लील मज़रको देखना पसन्द नही करेगा, अब 'मीर'की खुद्दारी देखिये—

इतना रकीबे-ख़ाना बर अन्दाज़से सलूक ?
जब आ निकलते हैं, यह सुनते हैं कि घर नही ॥

बदगुमानी और रश्कका यह हाल है कि 'मीर' नही चाहते कि माशूका कही जाय। वह किसी भी कामसे ख्वाह अपनी रिश्तेदारीमे ही जाती है। 'मीर'को रकीबके यहाँ जानेका शक होता है। क्योकि आशिक शक्की मिज़ाज होता है। मगर खुद्दार एव स्वाभिमानी इतने है कि उसकी टोह लेनेके लिए कही नही जाते।

'मीर'का एक शेर और दिया जा रहा है। मगर इस शेरसे लुत्फ अन्दोज़ वही हो सकेगे, जिन्होने ३०–३५ वर्ष पूर्वका ज़माना देखा है। जब कि शादीसे पूर्व पत्नीका मुख देख सकना असभव था। कई-कई बच्चे हो जानेपर भी पत्नीके मायकेमे उसके दीदार नसीब नही होते थे। पत्नीकी एक झलक दिखा देनेके लिए सालियो-सलेहजोकी खुशामदें की जा रही है। सरदर्दका बहाना करके पड़े हुए है। मगर क्या मजाल जो पत्नीकी झलक किसी दीवारो-दरके सूराखसे भी नज़र आ जाय। दिल उसे देखनेको तडप रहा है, मगर अन्तरग यही चाहता है कि मेरी पत्नी इतनी लज्जाशील और बाहया हो कि वह मुझे दिखाई न दे। अन्यथा उसके पीहरवाले उसे बेहया कहेगे, और उसकी गैरत और मर्दानगीको यह गवारा नही कि उसकी पत्नीपर कोई नुक्ताचीनी करे। अत ऊपरसे मिलनेका प्रयत्न करते हुए भी वह नही चाहता कि उसकी पत्नी सामने आये।

इसी तरह पत्नी भी नही चाहती कि उसके पतिपर कोई उँगली उठाये। वह भी अपने पतिकी आँखोमे लाजका पानी चाहती है। उसके पतिने अपने बडोके सामने असावधानीवश बच्चा गोदमे ले लिया तो एकान्तमे व्यग करते हुए चेतावनी दी कि तुमने यहाँ तो बच्चेको गोदमे ले लिया, कही मेरे पीहरमे ऐसी भूल न कर बैठना, वरना माँ-भावज मुझे चूँट-चूँट खायेगी।"

अब 'मीर'का शेर मुलाहिजा फरमाये—

दाग हूँ रश्के-मुहब्बतसे कि इतना बेताब।
किसकी तसकीके लिए घरसे तू बाहर निकला?

अपने प्यारेका आगमन सुनकर उसे देखनेकी आतुरतामे बदहवासीसे प्रियतमा बाहर निकल आई है। उसकी यह हरकत प्रेमीकी धारणाके विपरीत हुई। क्योकि वह तो अपनी प्रियतमाको असूर्य स्पृश्या समझता था। हजार प्रयत्न करनेपर भी झलक दिखेगी या नही। यही शकित हृदय लेकर वह आया था। मगर यहाँ आकर उसे कुछ दूसरा ही आलम नज़र आया। आशिक आख़िर आशिक है, शक्की उसका स्वभाव है। वह यह तो कल्पना भी नही कर सकता कि उसकी प्रेयसी इतनी निर्लज्ज है कि उसे देखनेको भी बाहर आ सकती है। शक्की स्वभावके कारण वह सशकित हो उठता है और माशूकसे बेताबीमे पूछ बैठता है—

किसकी तसकीके लिए घरसे तू बाहर निकला[1]।

गज़लपर एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि उसमे सामयिक घटनाओका उल्लेख नही मिलता। यह आक्षेप किसी हदतक ठीक है।

सामयिक घटनाएँ

क्योकि गज़लका निर्माण जिन तन्तुओसे हुआ है, उनका मेल इस तरहकी शायरीसे नही

---

[1]ध्यान रहे उर्दू-शायरीकी प्रथाके अनुसार माशूकके लिए प्रयुक्त क्रिया आदि पुल्लिग लिखे जाते हैं।

बैठता। गजलका अस्तित्व चिरकाल तक होना चाहिए, इसलिए उसमें उन घटनाओंको नज्म करनेसे परहेज किया जाता है, जो आँधीके समान बढ़ती-घटती है।

फारसीके मशहूर शायर हाफिजके जीवनकालमे उसका देश ५ बार विजित हुआ। कभी किसी विजेताने उसे वीरान कर दिया। कभी किसीने उसे चमन बना दिया। विजेता आँधी-तूफानकी तरह आये और विलीन हो गये। हाफिज़ने यह सब इन्कलाब अपनी आँखोसे देखे। मगर एक भी घटनाका उल्लेख उन्होने अपनी शायरीमे नही किया। फिर भी क्यो उनकी शायरी इतनी बुलन्द और प्रभावशाली है कि सदियाँ गुज़र जानेपर भी पहिलेकी तरह तरो-ताजा बनी हुई है। बार-बार पढनेपर भी मन लालायित बना रहता है ?

इसका कारण यही है कि उन्होने जो इन्कलाब अपने जीवनमे देखे, उन्हे देखकर वे बिलखे नही। चुपचाप सहते गये और स्वय साकार व्यथा बन गये। परिणाम इसका यह हुआ कि जो भी बोल व्यथित हृदतन्त्रीसे निकला अमर हो गया !

समुद्र मन्थनसे निकले हुए विषको देखकर बाबा भोलेनाथ चीख़ उठते तो उन्हे महादेव कौन कहता ? महादेव तो वे तभी समझे गये, जब ससारका ज़हर वे स्वय पीकर बैठ गये।

नज्म-गो और गज़लगो-शायरोमे यही अन्तर है। नज्म-गो शायर आपदाओको देखकर उससे प्रभावित होता है, और जो देखता है, उसे बढा-चढाकर दूसरोपर जाहिर करता है। गजल-गो शायर आपदाओको अपनेमे जज्ब कर लेता है, फिर जो जज्बात उसके मुँहसे प्रस्फुटित होते है। वही गज़ल कहलाते है।

उर्दूके अमर शायर मीर, गालिब ऐसे ही शायर हुए है। उनके जीवनकालमे बादशाहते मिटी, दिल्ली लुटी, और न जाने कितने इन्कलाब आये। सब उतार-चढाव अपनी आँखोसे देखे। निरुपाय बने घुटते रहे, मिटते रहे।

उन इन्कलाबातने जो हश्र बरपा किया, उनके बारेमे 'मीर' इतना कहकर चुप हो गये—

दीदनी है शिकस्तगी दिलकी।
क्या इमारत ग़मोने ढाई है॥

और गालिब इससे ज्यादा क्या कहते ?—

चिराग़े-मुर्दा हूँ मैं बे ज़बाँ गोरे-गरीबाँका—

उनके जीवनमे जितनी मुसीबते आ सकती थी, आई। वे मृत्युकी प्रतीक्षा करते रहे—

हो चुकीं ग़ालिब ! बलायें सब तमाम।
एक मर्गे-नागहानी और है॥

लेकिन ऐसा भी नही है कि गजलगो शायरोने सामयिक घटनाओपर कुछ भी नही कहा हो। कहा है, परन्तु बहुत सक्षेपमे और नपे-तुले शब्दोमे। 'मीर'के जीवनकालमे कादिर रहीलाने शाहआलम बादशाहकी आँखोमे नीलकी सलाइयाँ फेरकर उन्हे ज्योतिहीन कर दिया था। इस दर्दनाक घटनाको 'मीर'ने अपनी गज़लके एक शेरमे यूँ व्यक्त किया है—

शहाँ कि कुहले-जवाहर थी ख़ाके-पा जिनकी।
उन्हींकी आँखोमें फिरती सलाइयाँ देखीं[1]॥

इस घटनाको 'मीर'ने इतने सक्षेपमे बयान किया है, कि कुछ कहनेको शेष नही रहा। इसी घटनाको इकबालने नज्ममें प्रस्तुत किया है, जिसमे काफी अशआर है।

---

[1]जिन बादशाहोकी पाँवकी ख़ाक जवाहरका सुर्मा समझी जाती थी। उन्ही बादशाहोकी आँखोंमे सलाइयाँ फिरती देखी गई।

वर्तमान युगीन गज़लगो शायरोमे यह भावना उत्तरोत्तर बढती जा रही है कि गज़लमे भी सामयिक घटनाओ, लोकोपयोगी कार्यो और अन्य आवश्यकीय विषयोका समावेश किया जाय, ताकि गज़ल अधिक-से-अधिक उपयोगी और समृद्धिशाली बन सके और वह मानसिक भूख मिटानेके अतिरिक्त भी हर तरहसे जीवनोपयोगी बन सके। इस तरहके हज़ार-हा शेर 'शेरो-सुखन'के चारो भागोमे मिलेगे। विषयको स्पष्ट करनेके लिए चन्द शेर शीर्षकके साथ यहाँ दिये जा रहे हैं, ताकि उस तरहके अशआर पुस्तकमे सुगमतापूर्वक खोजे जा सके। साथ ही गजलका शेर अपने अन्दर कितने भाव रखता है, यह भी दृष्टि प्राप्त हो सके।

नैतिक

असर लखनवी—ईमाँ ग़लत, उसूल गलत, इद्दुआ[1] गलत।
इन्साँकी दिल दही[2] अगर इन्साँ न कर सके॥

वोह काम कर बुलन्द हो, जिससे मज़ाके-ज़ीस्त[3]।
दिन ज़िन्दगीके गिनते नही महो-सालसे॥

क्या-क्या दुआएँ माँगते है सब मगर 'असर'।
अपनी यही दुआ है, कोई मुद्दआ[4] न हो॥

नज्म तबातबाई— काबूसे नफ़्सेबदको निकलने कभी न दो।
फिर शेर है जो यह सगे-दीवाना[5] छुट गया॥

अहसान ले न हिम्मते-मर्दाना छोड़कर।
रस्ता भी चल तो सब्ज़-ए-बेगाना[6] छोड़कर॥

---

[1]दावा, [2]दिल रखना, [3]जीवनका लक्ष, [4]इच्छा, [5]पागल कुत्ता; [6]हरीभरी घासको।

आरज़ू लखनवी—

फैल गई बालोंमें सुफेदी, चौंक जरा करवट तो बदल।
शामसे गाफिल सोनेवाले ! देख तो कितनी रात हुई ॥

इज्जत कुछ और शै है, नुमाइश कुछ और चीज़।
यूँ तो यहाँ ख़ुरोसके[1] सरपर भी ताज है ॥

शबनमके[2] आँसुओंपर क्या हँस रहे हैं गुंचे[3]।
उनसे तो कोई पूछे कबतक हँसा करेंगे ॥

खिले भी कुछ तो है बहतर तलबसे इस्तग़ना[4]।
बनो तो शाह बनो, 'आरज़ू' गदा[5] न बनो ॥

हुस्ने-सीरतपर[6] नजर कर, हुस्ने-सूरतको[7] न देख।
आदमी है नामका गर ख़ू[8] नहीं इन्सानकी ॥

गुबार उठता है यह कहता हुआ गोरे-ग़रीबाँसे[9] ॥
"जहाँमें एक दिन सबका यही अंजाम होना है ॥"

गम दिया है कि मसर्रत दी है, सबमें इक तरहकी लज्जत दी है।
हँस न इतना कि ख़ुशी गम हो जाये, शै हरइक हस्बे जरूरत दी है ॥

शाद अज़ीमाबादी—

गुलोंने ख़ारोंके छेड़नेपर सिवा ख़मोशीके दम न मारा।
शरीफ उलझें अगर किसीसे तो फिर शराफत कहाँ रहेगी ॥

हवाये-दहर[10] बिगाड़े हज़ार फूलोंको।
न हो वोह रग शराफतकी कुछ तो बू होगी ॥

---

[1]मुर्गके, [2]ओसके, [3]कलियाँ, [4]सन्तोष, [5]भिक्षुक, [6]सुन्दर स्वभावपर, [7]सुन्दर मुखको, [8]स्वभाव, [9]कब्रिस्तानसे, [10]दुनियाकी हवा।

किसीके हम न काम आये, न कोई अपने काम आया।
तअ़ाज्जुब है कि तो भी ज़ुमर-ए-इन्सांमें[1] नाम आया॥

बशरके दिलमें न पड़ता जो आरज़ूका दाग़।
ख़ुदा गवाह कि अनमोल यह नगो होता॥

भलाई इसलिए चाही कि हों भले मशहूर।
गरज़ कि अपने ही मतलबके आश्ना थे हम॥

गुलोंपर क्या है, काँटो तकका मैं दिलसे दुआ गो हूँ।
ख़ुदा बन्दा! न टूटे दिल किसी दुश्मन-से-दुश्मनका॥

यह दुनिया है ऐ 'शाद'! नाहक न उलझो।
हर इक कुछ तो अपनी-सी आख़िर कहेगा॥

मुर्दोंकी कनाअ़तोपै[2] है रश्क[3]।
पहने रहे इक कफन हमेशा॥

अनवर साबरी—अमने-आलम[4] तो मुश्किल नहीं है।
आदमी, आदमी हो तो जाये॥

अब्र अहसनी— ग़मो-दर्दपै बढ़के कब्ज़ा जमाले।
कि इसपर नही मुनइमोका[5] इजारा[6]॥
अगर अब भी ज़िल्लतमें गुज़रे तो क़िस्मत।
ख़ुदी भी हमारी ख़ुदा भी हमारा॥

असअ़र मलीहाबादी—चमनमें बहे लाख शबनमके[7] आँसू।
कली सीखती ही रही मुसकराना॥

---

[1]मनुष्योंकी श्रेणीमे, [2]सन्तोषपर [3]ईर्ष्या, [4]विश्वशान्ति; [5]धनिकोका, [6]दावा, [7]ओसके।

असद भोपाली—'असद' चलो कि बदल दें हयातकी[1] तक़दीर।
हमारे साथ ज़मानेका फ़ैसला होगा॥

ख़लिश दर्दी— खेलते हैं जो मज़लूमोकी[2] जानोसे।
हैवान अच्छे है ऐसे इन्सानोसे॥

दर्द सईदी टोंकी—अभी आदमी-आदमीका है दुश्मन।
अभी ख़ुदको समझा नही आदमीने॥

जहाँ सैकड़ो बुतकदे[3] ढा दिये हैं।
ख़ुदा भी तराशे है कुछ बन्दगीने॥

आनन्दनारायण मुल्ला—

ख़ूने-जिगरके क़तरे, और अश्क बनके टपकें ?
किस कामके लिए थे, किस काम आ रहे हैं ?

ख़ुदापर व्यंग

नक़्श सहराई—सफ़ीनेका[4] नही, मुझको यह ग़म है।
जो शह दे[5] नाख़ुदाको,[6] वोह ख़ुदा क्या॥

यगाना चंगेज़ी— आई को टाल दे जभी जानें।
दम-ब-ख़ुद है तो फिर ख़ुदा क्या है॥

बिस्मिल सईदी—

इलाही दुनियामें और कुछ दिन अभी क़यामत न आने पाये।
तेरे बनाये हुए बशरको[7] अभी मैं इन्साँ बना रहा हूँ॥

---

[1]ज़िन्दगीकी, [2]सताये हुओंकी; [3]मन्दिर, [4]नावका; [5]संकेत, इशारा; [6]मल्लाहको, [7]आदमीको।

उपासनायें

बिस्मिल सईदी—

नहीं अपने किसी मक़सदसे[1] खाली कोई भी सजदा[2]।
ख़ुदाके नामसे करता है इन्सां बन्दगी अपनी॥

आरज़ू लखनवी—जाते-ख़ुदा में यूँ हो महव।
नामे-ख़ुदाको भूल जा॥

यगाना चंगेज़ी—बन्दे न होंगे जितने ख़ुदा हैं ख़ुदाईमें।
किस-किस ख़ुदाके सामने सजदा करे कोई॥

धन कुवेरोंसे

मुख़्तार अदीबी—

तुम्हे मुबारक हो कसरो-ईवाँ,[3] यह ऐशो-मस्तीके साज़ो-सामाँ।
है झोपड़ोंसे मुझे मुहब्बत, मैं ग़मके मारोंका साथ दूँगा॥

साकिब लखनवी—

मकाँ मुनअमका[4] सोनेसे, यह ख़ूने-दिलसे बनता है।
ख़सो-ख़ाशाकका[5] घर भी बड़ी मुश्किलसे बनता है॥

आरज़ू लखनवी—

मुझे रहनेको वोह मिला है घर कि जो आफ़तोंकी है रहगुज़र[6]।
तुम्हे ख़ाकसारोंकी[7] क्या ख़बर, कभी नीचे उतरे हो बामसे[8] ?

---

[1]मतलबसे, [2]नमाज-उपासना, [3]महल, [4]धनिकका महल; [5]घास-फूंसका, [6]मार्ग, [7]दीन-दुखियोंकी, [8]कमरेसे।

निर्धनता

रियाज़ ख़ैराबादी— मुफ़लिसोंकी जिन्दगीका ज़िक्र क्या ?
मुफ़लिसोंकी मौत भी अच्छी नही ॥

यगाना चंगेज़ी— ख़्वाह पियाला हो, या निवाला हो।
बन पड़े तो झपट ले, भीक न माँग ॥

पराई आग

दत्तात्रिय कैफी— गम रहा उनका जो दोज़ख़मे पडे जलते है।
मेरे ख़ुश होनेका जन्नतमें भी सामाँ न हुआ ॥

रियाज़ ख़ैराबादी— मेरे सिवा नज़र आये न कोई दोज़ख़में।
किसीका जुर्म हो, मालिक मुझे सज़ा देना ॥

मनुष्यकी मजबूरियाँ

राज़ यज़दानी— अजब करम है, कि वे अख़्तियारियाँ देकर।
अ़ता किया है दो आलमपै अख़्तियार मुझे ॥

शेरी भोपाली—न जीनेपर ही क़ाबू है, न मरनेका ही इमकाँ है।
हक़ीक़तमें इन्ही मजबूरियोका नाम इन्साँ है ॥

अपनी भाषा

यगाना— समझमें कुछ नहीं आता,
पढ़े जाऊँ तो क्या हासिल ?
नमाज़ोका है कुछ मतलब तो
परदेशी ज़बाँ क्यो हो ?

ये नसीहतकार

अयूब— जो हुस्नो-इश्ककी रूदादसे[1] हैं बेगाने[2]।
वोह क्या समझके चले आये मुझको समझाने ॥

नागरिकता

तसव्वुर किरतपुरी—

कुछ मेरे बाद और भी आयेंगे क़ाफ़िले[3]।
काँटे यह रास्तेसे हटा लूँ तो चैन लूँ ॥

साम्यवाद

आनन्दनारायण मुल्ला—

महर[4] वोह है ख़ाकके ज़र्रे जो करदे ज़रनिगार[5]।
ऊँची-ऊँची चोटियोंपर, नूर[6] बरसानेसे क्या ॥

न जानें कितनी शमएँ गुल हुईं, कितने बुझे तारे
तब इक ख़ुरशीद[7] इतराता हुआ बाला-ए-बाम[8] आया

भक्त वत्सलता

असर— उसकी रहमतको[9] नाज़[10] हो जिसपर।
तुझसे ऐसी 'असर' ख़ता न हुई ॥

आरज़ू— करसमे[11] तेरे नज़रकी तो ढै गया सब ग़रूर।
बढ़ा था नाज़ कि हदका गुनहगार हूँ मैं ॥

---

[1]कहानोंसे, [2]अनभिज्ञ, [3]यात्रीदल, [4]सूर्य्य; [5]...
[6]प्रकाश, [7]सूर्य्य, [8]कमरेके ऊपर, [9]दयालुताको; [10]...
[11]...।

मज़हबसे बेजारी

यगाना—

दुनियाके साथ दीनकी बेगार अलअमाँ।
इन्सान आदमी न हुआ, जानवर हुआ॥

बस एक नुक्त-ए-फ़र्ज़ीका नाम है काबा।
किसीको मरकज़े-तहक़ीक़का पता न चला॥

मज़हबसे दग़ा न कर, दग़ासे बाज़ आ।
किस कामका हज! मकरो-रियासे बाज़ आ॥
ईमान तो कहता है कि इन्साँ बन जा।
बन्देकी मददको आ, ख़ुदासे बाज़ आ॥

फ़िरक़ा-परस्ती

यगाना—

पढ़के दो कलमे अगर कोई मुसलमाँ हो जाय।
फिर तो हैवान भी दो रोज़में इन्साँ हो जाय॥

सब तेरे सिवा काफ़िर, आख़िर इसका मतलब क्या?
सिर फिरा दे इन्साँका ऐसा ख़ब्ते-मज़हब क्या?

महराबोंमें सजदा वाजिब, हुस्नके आगे सजदा हराम।
ऐसे गुनहगारोंपै ख़ुदाकी मार नहीं तो कुछ भी नहीं॥

आनन्दनारायण मुल्ला—

मैं फ़क़त इन्सान हूँ, हिन्दू-मुसलमाँ कुछ नहीं।
मेरे दिलके दर्दमें तफ़रीक़े-ईमाँ कुछ नहीं॥

असर लखनवी—

मसजिदेवाज़से इक रिन्द यह कहते उठ्ठा—
"काफ़िर अच्छे हैं दिलाज़ार मुसलमानोंसे"॥

निशात सईदी—
हैं दिल चबाये फिरका परस्तीका है शिकार।
इन्सानियतकी मौत नुमायाँ अभीसे है॥

सर्व धर्म समभाव

अज़ीज़ लखनवी—

मंज़रे-जज़्बात[1] है, ख़िलवत सरा-ए-दैर[2] भी।
काबेवालो फ़र्ज़ है तुमपर वहाँकी सैर भी॥

यगाना—
खड़े हैं दुराहेपै दैरो-हरमके[3]।
तेरी जुस्तजूमें सफ़र करनेवाले॥

अज़ीज़ लखनवी—

ज़हनमें आया न फ़र्क़े-इम्तयाज़ी[4] आजतक।
मुद्दतों देखा है हमने काबा-ओ-दैर भी॥

अहिंसा

आनन्दनारायण मुल्ला—

तशद्दुदको[5] तशद्ददसे दबालें यह तो मुमकिन है।
मगर शोलेको[6] शोलेसे बुझाया जा नहीं सकता॥

दिखा सकेगी न हरगिज़ जहाँको अम्नको[7] राह।
सितमगरीकी वोह मशअ़ल[8] जो दूदसे[9] हो सियाह॥

इन्साँकी जहालतका अभी है वही मेयार।
है सबसे सिवा पुख़्ता दलील आज भी तलवार॥

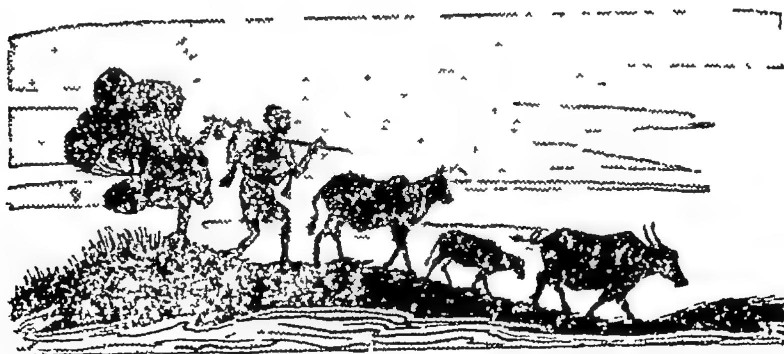
[1-2] मन्दिरकी एकान्त शान्ति देखने योग्य है; [3] मन्दिर-मसजिदके; [4] भेद, अन्तर, [5] हिंसाको, [6] आगको, [7] शान्तिको, [8] मशाल; [9] धुएँसे।

भारत-विभाजन, स्वराज्य-प्राप्ति, बापूकी शहादत आदि सामयिक और प्रेरणात्मक शायरीपर 'नई लहर' और 'मुशायरा' शीर्षक परिच्छेदोमे लिखा जा चुका है। पुनरावृत्तिकी यहाँ आवश्यकता नही।

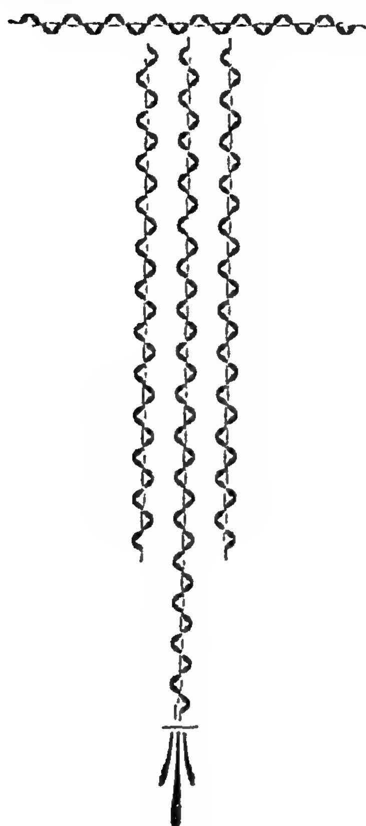
प्रसगके अनुसार जो अशआर जहनमे आये, वे इस परिच्छेदमे दिये गये है। ऐसे हजारो शेर शेरो-सुखनके पाँचो भागोमे यत्र-तत्र मिलेंगे। यह तो एक झलक मात्र है। बकौल दिल शाहजहाँपुरी—

मेरा हाल था जहाँतक, वोह अदा हुआ जबाँसे।
जो कहेंगे अश्के-रंगी, वोह अलग है दास्ताँसे॥

१६ अप्रेल १९५४ ई०]

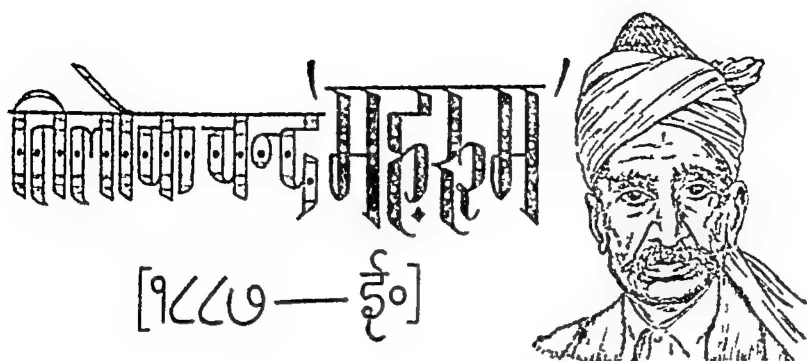


नई करवट



[वर्त्तमान युगीन वयोवृद्ध और युवक शायर]





लाला तिलोकचन्द 'महरूम' भगत रामदयालके सुपुत्र है। आपका जन्म ईसाखेल ज़ि० मियाँवाली (पाकिस्तान) मे १८८७ ई०मे हुआ। ७ वर्षकी आयुमे शिक्षा प्रारम्भ हुई। बी० ए० पास है। भारत-विभाजनसे पूर्व आप रावलपिण्डीमे मिडिल स्कूलके हेडमास्टर थे। अब दिल्लीमे रहते है। शायरीकी ओर रुचि आपकी बचपनसे है। आपकी नज्मोसे प्रभावित होकर 'अकबर' इलाहाबादीने लिखा था—

हैं दादका मुस्तहक कलामे-'महरूम'।
लफ़्ज़ोका जमाल और मानीका हुजूम॥
हैं उनका सुखन मुफीद दानिश आमोज।
उनकी नज्मोकी है बजा मुल्कमें धूम॥

१९१५मे आपकी धर्मपत्नीका स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्युपर जो आपने करुणापूर्ण नज्म लिखी, उसके चन्द शेर देखिये—

. . . .

यह हाथ जोड़के मुझसे मुआफियाँ कैसी ?
छिड़ी हैं आज यह रुखसतकी दास्ताँ कैसी ?

. . . .

मुझे तो रोकते हो बार-बार रोनेसे।
रुकोगे क्या न मेरे जार-जार रोनेसे ?

. . . .

किया था अहदे-वफा मुझसे उम्रभरके लिए।
अभीसे हो गये तैयार क्यों उधरके लिए॥
गुजरने पाये हैं मुश्किलसे पाँच साल अभी।
शबाबपर है तुम्हारा तो बाल-बाल अभी॥
उरूजपर[1] हैं उरूसाना[2] चाल-ढाल अभी।
न लाओ मौतका दिलमें जरा खयाल अभी॥
तुम्हारे मरनेके ऐ जान! यह दिन नहीं हरगिज़!
जहाँसे उठनेको यह साल-ओ-सिन नहीं हरगिज़॥

. . . .

लो उठके बैठो कि 'विद्या' सिराहने आई है।
तुम्हारे मुँहसे वोह दामन उठाने आई है॥
अदाये-तिफलीको[3] ही तो दिखाने आई है।
कि हँसती आई है तुमको हँसाने आई है॥
वोह चलके आई है घुटनोंपै, थक गई होगी।
तुम्हारे प्यारसे फिर उसको ताज़गी होगी॥

. . . .

नूरजहाँका मज़ार

नूरजहाँके टूटे-फूटे मजारको देखकर कहते हैं—

. . . .

तुझ-सी मलकाके लिए यह बारहदरी है ?
गालीचा सरेफर्श है न कोई दरी है॥

. . . .

---

[1]उन्नतिपर; [2]दुलहनो जैसी; [3]बचपनकी अदा।

ऐसी किसी जोगनकी भी कुटिया नहीं होती।
होती हो मगर यूँ सरे-सेहरा नही होती॥

. .. .

चौपाये जो घबराते हैं, गरमीसे तो अक्सर।
आराम लिया करते हैं, इस रोजेमें आकर॥
और शामको वालाई सियह खानोसे[1] शप्पर[2]।
उड़-उड़के लगाते है दरो-बामपै चक्कर॥

मामूर है यूँ महफिले-जाना न किसीकी।
आबाद रहे गौरे-गरीबाँ न किसीकी॥

आरास्ता[3] जिनके लिए गुलजारो-चमन[4] थे।
जो नाजुकीमें दाग दहे-बर्गे-समन थे॥
जो गुलरुखो-गुलपैरहनो-गुचा दहन थे।
शादाब गुलेतरसे कही जिनके वदन थे॥
पजमुर्दा वोह गुल दबके हुए खाकके नीचे।
ख्वाबीदा हैं, खारो-खसो खाशाकके नीचे॥

.. ..

जो कुछ थे कभी थे, मगर अब कुछ भी नही है।
टूटे हुए पिजरेसे पड़े जेरे-जमी है॥

.. . .

आपका नज्मगो शायरोमे बहुत बुलन्द मर्त्तबा है। कभी-कभी गज़ल भी कह लेते हैं। आपकी गजले नैतिक और पवित्र प्रेमसे ओत-प्रोत होती है। चन्द अशआर मुलाहिज़ा फरमाये—

ऐ हमरहाने-दस्ते-मुहब्बत[5]! बढ़े चलो।
अपना तो पाये-शौक सलासिलमें[6] रह गया॥

---

[1]अँधेरी छतोसे; [2]चमगीदड; [3]सजे हुए, [4]उद्यान वाटिकाये; [5]प्रेममार्गके साथियो; [6]जंजीरमे।

ऐ दिल ! यह क्या फ़सुर्दगी[1] आगाज़े-इश्कमें[2] ।
गुल क्यों तेरा चराग़ सरेशाम हो गया ॥

हो दौरेगम कि अहदेखुशी दोनों एक हैं ।
दोनों गुज़श्तनी[3] हैं ख़िज़ाँ क्या, बहार क्या ॥

समझमें आया न राज़ेसनअ़त[4] ज़रा भी सूरतगरे अज़लका[5] ।
बना रहा है मिटा-मिटाकर, मिटा रहा है बना-बनाकर ॥
अगर है मंज़ूरे-सर बुलन्दी तो दूर नज़रोंसे कर बुलन्दी ।
कि ओज[6] शम्सो-क़मरने[7] पाया है सरको अपने झुका-झुकाकर ॥

हैं-हैं ! किसीकी बज़्म मुझे याद आगई ।
वाइज़ ख़ुदाके वास्ते ज़िक्रे-जनाँ[8] न छेड़ ॥
दुनियामें ऐ जवाँ ! रविशे-सुलह कुल न छोड़ ।
जिससे किसीको रंज हो ऐसा बयाँ न छेड़ ॥
हमदम ! कहीं न हसरते-ख़्वाबीदा जाग उठे ।
ऐयामे-हुस्नोइश्ककी फिर दास्ताँ न छेड़ ॥

किससे सुनूँ ? जो तुम न करो बात प्यारकी ।
किससे कहूँ ? जो तुम न सुनो माजराये-दिल ॥

है सुबह और आज परीशाँ अभीसे है ।
यानी शबे-फिराकके सामाँ अभीसे हैं ॥

---

[1]मुर्झायापन; [2]प्रेमके प्रारम्भमे; [3]नाशवान, [4]कला-भेद; [5]विधाताका; [6]उच्चता, उन्नति; [7]सूर्य-चन्द्रने; [8]जन्नतकी चरचा ।

कोहो-सहरा[1]-ओ-साहिले-दरिया[2] ।
बे ठिकानोके सौ ठिकाने है ॥

बचूँ तेरी आतिशे-इश्कसे[3] यह मजालो-ताब कहाँ मुझे ।
मेरे दिलका और तेरे हुस्नका, है खसो-शररका[4] मुआमला ॥

नजरकर खन्दये-गुलपर[5] रियाजे-दहरमें[6] गाफिल !
निहायत मुख्तसर है, जो घड़ी है याँ मसर्रतकी[7] ॥

बाद तर्के-आरजू[8] बैठा हूँ क्या मुतमइन[9] ।
हो गई आसाँ हरइक मुश्किल ब-आसानी मेरी ॥

शबे-फ़ुरकतकी दास्ताँ है तवील[10] ।
नीद अलमुख्तसर नही आती ॥

खलिशने[11] दिलको मेरे कुछ मजा दिया ऐसा ।
कि जमा करता हूँ मै खार[12] आशियाँके लिए ॥

तुम्हीसे ली है सबाने भी शोखिये-रफ़्तार[13] ।
चरागे-गौरेगरीबाँ[14] न क्यो बुझाके चले ?
रहेगी हाजते-शरहे-जफ़ा[15] न महशरमें ।
इसी अदासे जो तुम सामने खुदाके चले ॥

---

[1]पर्वत-जगल, [2]दरियाका किनारा; [3]प्रेम-अग्निसे; [4]फूँस-आगका, [5]फूलोंकी मुसकानपर, [6]ससाररूपी उद्यानमें; [7]सुखकी, खुशीकी, [8]अभिलाषाओके त्याग करनेके बाद; [9]निश्चिन्त; [10]बडी, [11]चुभनने, [12]काँटे, [13]चालकी चचलता; [14]कब्रोके दीपक, [15]अत्याचारोका भाष्य करनेकी आवश्यकता ।

दिखाई देते हैं ख़ूबोंके ऐब भी अच्छे।
कि चाके-दामने-गुलको नहीं रफ़ू करते॥

कोई सोता हो जैसे डूबती किश्तीके तख़्तेपर।
अगर कुछ है तो बस इतनी है इस दुनियाकी राहत[1] भी॥

किस मुँहसे जाके शिकवये-जौरो-जफा[2] करें।
मरते हैं और उनकी पशेमानियोंसे हम॥

हो जाते हैं दौरे-आशिकीमें।
हालात तमाम नामुआफ़िक॥

अब जहाँमें उनकी क़बरोंके निशाँ मिलते नहीं।
उम्रभर जो फ़िक्रे-तसख़ीरे-जहाँ[3] करते रहे॥

पहलूमें दिल है दर्दकी दुनिया कहे जिसे।
पर इसकदर उजाड कि सहरा कहे जिसे॥
वोह रौबे-हुस्न था कि बन आई न हमसे बात।
यूँ हाले-दिल कहा कि न कहना कहे जिसे॥

साकी! तेरा अक्से-रुख़ है वरना—
सहबा[4] रंगीं न जाम[5] रंगीं॥

जिनकी तकदीसकी[6] खाते हैं फ़रिश्ते भी कसम।
हम गुनहगारोंमें होते हैं वोह इन्साँ पैदा॥

---

[1]सुख-चैन, [2]अत्याचारोंकी शिकायतें; [3]संसार-विजय; [4]शराब; [5]प्याला; [6]पवित्रताकी।

जीस्तकी[1] दुश्वारियोंने यह तो अहसाँ कर दिया।
मौत-सी मुश्किलको मेरे हक़में आसाँ कर दिया॥

किस मुँहसे शिकवा उनके न आनेका कीजिये।
जब जा सके न उनके न आयेपै जाँसे हम॥

ज़माना ख़ाकसारीका[2] नहीं, ख़ुद्दार[3] बनकर उठ।
मिटा वोह राहे-मंज़िलमें जो बैठा नक़्शे-पा[4] होकर॥

ज़िन्दगी नाकामियोंकी इक मुसलसल[5] दास्ताँ।
मौत क्या है ज़िन्दगीकी दास्ताँका ख़ात्मा॥

दर्दे-दिल, सोज़े-जिगर, अश्के-रवाँ, दाग़े-फ़िराक़।
सच तो यह है आपके अहसाँ हैं मुझपर बेशुमार॥

तेरी नज़रोंसे गिर जाना, तेरे दिलसे उतर जाना।
यह वोह अफ़साना है, जिससे बहुत अच्छा है मर जाना॥

जो तू ग़मख़्वार हो जाये तो ग़म क्या?
ज़माना क्या ज़मानेके सितम क्या॥

हविसे-गुलमें बढ़ाया न कभी मैंने हाथ।
न किसी ख़ारसे उलझा कभी दामन मेरा॥

---

[1]जीवनकी।

इसी भावको एक शायरने यूँ नज़्म किया है—

नियाज़े-इश्क़में ख़ामी कोई मालूम होती है।
तुम्हारी बरहमी क्यों बरहमी मालूम होती है॥

[2]नम्रताका; [3]स्वाभिमानी, [4]चरणचिह्न, [5]क्रमबद्ध।

कहाँ अफ़सानये-हस्तीका आग़ाज़ ।
सुनाते आये हैं सब दरमियाँसे ।।

तुझसे राहत छीन ली जायेगी कल उसके लिए ।
ऐ दिले-राहततलब ! जो तालिबे-ईज़ा' है आज ।।

बादेबहार ! तुझसे उमीदे-निशात क्या ?
बस इस क़दर कि ज़ख़्मे-कुहनको हराकरे ।।

महफ़िलमें उनकी ग़ैर है, जलिये कि बैठिये ?
'महरूम' ! देख शमअ़को, यानी कि जलके चल ।।

२२ अगस्त १९५३]

—निगार जनवरी १९४१

'दुःखोके इच्छुक ।



'ताजवर' नजीबाबादी

[१८९४–१९५१ ई०]

मौलाना ताजवर नजीबाबादी उर्दूके बहुत बडे हितैषी, प्रसारक और प्रामाणिक विद्वान थे। आपके निधनसे उर्दू-ससारकी बहुत अधिक हानि हुई है। आप जीवन पर्यंत उर्दूके प्रसार, निर्माण, और नोक-पलक निकालनेमे लगे रहे।

आपका पूरा नाम अहसानअलीखाँ और उपनाम 'ताजवर' था। उत्तर-प्रदेशके बिजनौर जिलेकी तहसील नजीबाबादमे आपका १८९४मे जन्म हुआ। देवबन्दके प्रसिद्ध मुस्लिम विद्यालय 'दारुल अलूम'की अरबी-फारसी और मजहबी, शिक्षामे पारगत होनेके बाद १९१४ ई०मे २० वर्षकी अवस्थामे आप लाहौर चले गये और वहाँ ता-उम्र साहित्य-सेवा करते रहे। पजाबियोकी कट्टर प्रान्तीयताके कारण आपको पग-पगपर विघ्न-बाधाओने घेरा, परन्तु आप मर्दानावार मैदानमे डटे रहे और अपने लक्ष्यकी ओर बराबर बढते रहे। पजाबमे 'उर्दू-बोलो' आन्दोलनके आप मुख्य प्रेरक थे। आपने अपने विचारोके प्रसारके लिए मखज़न, हिमायूँ, शाहकार और अदबी दुनिया-जैसे प्रसिद्ध पत्रोका सपादन, प्रकाशन किया। आपके आलोचनात्मक, गवेषणात्मक, खोजपूर्ण लेखो और साहित्यिक निबन्धोको बहुत चावसे पढा जाता था। पजाब यूनिवर्सिटीसे आपका सदैव सम्बन्ध रहा। आपके अनेक शिष्य पाकिस्तान और भारतमे ख्याति-

प्राप्त साहित्यिक विद्वान है। आप आत्म-विज्ञापनसे सदैव बचते रहे। यहाँतक कि अपने कलामका सकलन तक नही छपवाया। शिष्योको आस्मानमे चढा दिया, परन्तु स्वय एकाग्र होकर कार्य करते रहे।

मन बहलावके लिए कभी-कभी शेर भी कह लेते थे। नमूनेके तौरपर चन्द शेर दिये जा रहे हैं। उर्दू-ससारमे आपका मर्त्तबा गद्य-लेखक और सम्पादकके नाते बहुत बुलन्द है।

अब आप बनेंगे अपनी दुनिया।
दुनिया तुझे भूल जायेंगे हम॥

गमकी तनहाईमें जब वोह ख्वावे-हसीं याद आता है।
यूँ ही बैठे-बैठे दिलको जाने क्या हो जाता है?

तेरी मुहब्बतमें मेरे चेहरेसे है नुमायाँ[1] जलाल[2] तेरा।
हूँ तेरे जलवोंमें महव[3] ऐसा कि तेरा आइनादार[4] हूँ मैं॥

अहले-चमनको कैदे-कफसकी है आरजू।
सैयादसे भी बढ़के सितम वागवांके है॥

यह लुटी हुई-सी बहार क्यों है, कहाँ वह जाने-बहार है?
यह चमनसे कौन चला गया, कि कली-कलीको फ़िशार[5] है?

महफिले-हश्र भी सूनी नजर आती है मुझे।
ढूँढती है जिसे नजरें, वही महशरमें नहीं॥

है मेरे खाकके जर्रोमें फिर नमूदे-हयात[6]।
कहीं उन्हे तो नहीं याद आ रहा हूँ मैं?

---

[1]प्रकट, [2]रूप-गौरव; [3]लीन; [4]प्रतिविम्ब; [5]सिकुडी हुई-सी है। [6]जीवनके चिह्न।

मुहब्बत आह, मुहब्बतकी जिन्दगी मत पूछ।
बडी मुसीबतोंमें मुब्तला[1] रहा हूँ मैं॥

मान लिया कि ताजवर! वोह नही अख्तयारमें।
कहिये तो अपने दिलपै है, आपको अख्तियार क्या?

न दिल बदला, न दिलकी आरजू बदली न वोह बदले।
मैं कैसे ऐतबारे-इन्कलावे-आसमाँ कर लूँ?
सबब हर एक मुझसे पूछता है मेरे रोनेका।
इलाही सारी दुनियाको मैं क्योकर राजदाँ[2] कर लूँ?

ख़लिशे-इश्क[3] मिटेगी मिरे दिलसे जबतक।
दिल ही मिट जायेगा, ऐसा नजर आता है मुझे॥

मलामतगरो! उनको जिदपै तुम्हारी।
नही भी अगर चाहता, चाहता हूँ॥
ख़ुदा मुझको तुझसे ही महरूम कर दे।
जो कुछ और तेरे सिवा चाहता हूँ॥
नजरभरके जो देख सकते है मुझको।
मैं उनकी नजर देखना चाहता हूँ॥

बस इतनी दाद देना बाद मेरे मेरी उल्फतकी।
कि याद आऊँ तो अपने आपको तुम प्यार कर लेना॥

खुद्दारिये-जुनूँने न जाने दिया वहाँ।
कम्बख़्त राहे-दोस्तमें दीवार हो गई॥

---

[1]घिरा हुआ, [2]भेदी; [3]प्रेम-चुभन।

मिटा न मुझको मुहब्बतकी खुद-फ़रामोशी[1]।
कि अपने भूलनेवालेकी यादगार हूँ मैं॥

कहीं रुसवा न हो अब शाने-इस्तगना मुहब्बतकी[2]।
मेरी हालत तुम्हारे रहमके काबिल न बन जाये॥

यह सितम? क़ैदे-कफ़समें सैयाद!
किसने पूछा था बहार आई है?

५ जनवरी १९५३ ई०]



सैय्याद

---

[1]अपनेको भूल जानेकी स्थिति; [2]प्रेमकी बेपरवाहीकी शान।



'अलम' मुज़फ़्फ़रनगरी

[१८९४ — ई०]

मौलाना मुहम्मद इसहाक 'अलम' मुजफ्फरनगर निवासी हैं। आप अल्लामा 'सीमाब' अकबराबादीके सुयोग्य शिष्य हैं। अपने जीवन-कालमे ही अल्लामा सीमाबने आपको मसनदे-उस्तादी अता कर दी थी। उस्तादकी वृद्धावस्थामे आप ही अपने गुरु भाइयोके कलामका सशोधन करते रहे हैं और उनकी मृत्युके बाद भी यह क्रम चालू है। आपके अपने शिष्य भी काफी हैं। आपके सशोधन बहुत मार्केके होते हैं। आपके एक शिष्य श्री कुलभूषण जैन 'कौसर' डालमियानगरमे कयाम फर्माते हैं। मुझे उनके कलामपर आपकी दी हुई इसलाहे देखनेका इत्तफाक होता रहता है। उस बिनापर मुझे कहना पडता है कि आप अपने शिष्योके साथ बहुत ही सहृदयताका व्यवहार रखते हैं और उन्हे काफी प्रोत्साहन देते रहते हैं। बतौर नमूना चन्द इसलाहे यहाँ दी जाती है—

कौसर— बागे-हस्तीमें सबक फूलसे लें अहले-नज़र।
जिसने की उम्र तबस्सुमसे बसर खारोमें॥

अलम— बागे-हस्तीमें सबक गुलसे लें अहले-शिकवा।
जिसने हँस-खेलके की उम्र बसर खारोमें॥

बड़ी आफत है दमभरका सकूँ[1] भी राहे-उल्फतमें।
जो हर मंजिलपै ठहरे, वोह हमारा हमसफर क्यो हो॥

है उन्हीका अक्से-रुख़ हर जलवये-दैरो-हरम[2]।
किस तरह फिर इम्तयाजे-कुफ्रो-ईमा[3] कीजिये॥

सब ही निगाहमें रहे अपने हों या कि गैर हो।
महफिले-नाजमें तेरी ऐसा निजाम[4] चाहिए॥

बहुत-से व्यक्ति ऐसे भी है जो ईश्वरोपासनामे तो लीन रहते है, मगर उसके बन्दोकी उपेक्षा करते है। ईश्वरको पतितपावन, दलितोद्धारक कहते नही थकते; परन्तु स्वय पतितो एव दलितोसे घृणित और दुर-दुरका व्यवहार करते है। इसी भावनाको लक्ष करके सर इकबालने फ़र्माया था—

ख़ुदाके बन्दे तो है हजारो, बनोमें फिरते है मारे-मारे।
मै उनका बन्दा बनूँगा जिनको, ख़ुदाके बन्दोसे प्यार होगा॥

इसी भावको देखिये 'अलम' किस ख़ूबीसे व्यक्त करते है —

है फर्ज तुझपै फकत बन्दये-ख़ुदाकी तलाश।
ख़ुदाकी फिक्र न कर, वोह मिला, मिला न मिला॥

तलाशो-जुस्तजूकी सरहदें अब ख़त्म होती है।
ख़ुदा मुझको नजर आने लगा इन्साने-कामिलमें॥

---

[1]चैन, [2]मन्दिर-मजसिदका चमत्कार, [3]धर्म-अधर्ममें भेद-भाव; [4]प्रबन्ध-व्यवस्था।

अत्याचारी शासकोको देखिये 'अलम साहबने रगे-तगज्जुलमे कितनी वडी चेतावनी दी है—

कहीं यही न हो बुनियादे-इनकलाबे-चमन ।
चमनको ख़ाकमें यूँ ख़ाके-आशियाँ न मिला ।।

न दे तू तानये-उफ़्तादगी[1] पाबन्दे-मुश्किलको[2] ।
यह उट्ठा तो उठेगा साथ लेकर तेरी महफ़िलको ।।

अदूरदर्शी अथवा गलत नेताके कारण जनता आपत्तियोके भँवरमें फँस जाती है । फिर भी वह अज्ञानवश उसके चगुलसे निकलनेका प्रयत्न नही करती । जो व्यक्ति नाख़ुदाको[3] ख़ुदा समझ ले, उसके दुर्भाग्यका उपाय भी क्या ?

नाख़ुदाको मैं ख़ुदा उस वक़्त भी समझा किया ।
जब मुझे ख़ुद नाख़ुदाने ज़ेरे-तूफ़ाँ कर दिया ।।

लेकिन 'अलम' साहव इसका भी उपाय वताते है । यानी आप ज़हर-की दवा जहर वताते हैं—

और भी आसान होगी राहकी दुश्वारियाँ ।
हर अमीरे-कारवाँको[4] राहज़न[5] होने भी दे ।।

'अलम' साहवके इश्कका तसव्वुर मुलाहिजा फर्मायें—

मैं अब वाकिफ हुआ हूँ, है कमाले-इश्क वोह मज़िल ।
जहाँ इन्सानको महसूस होती है कमी अपनी ।।

---

[1] खस्ता हालतके ताने, [2] असहाय स्थितिमे पडे हुए को, लाचारको; [3] केवटको, मल्लाहको, [4] यात्रीदलके नेताको, [5] लुटेरा ।

कहाँ वोह ऐ 'अलम' ! रंजे-हयाते-आशिकी[1] समझे।
जो मर जाना मुहब्बतमें कमाले-जिन्दगी समझे ॥

वेनियाजी[2] थर-थरा उट्ठी मिजाजे-हुस्नकी।
दिलने जिस दम बारगाहे-इश्कमें[3] सजदा[4] किया ॥

अक्सर गजलमे वर्णित आशिक अपनी वफाओकी तारीफे और माशूकके जौर-ओ-तगाफुलकी शिकायतें करते हुए नही थकता था। लेकिन वर्त्तमान युगमे गज़लका लबोलहजा बदल गया है। आजका शायर दूसरो के छिद्रान्वेषण करने की अपेक्षा स्वय अपनी त्रुटियाँ खोजनेका प्रयत्न करता है—

मुझे क्यों छोड़ जाता बेसहारे दस्ते-गुरवतमें[5]।
जरूरत कुछ अगर महसूस करता कारवाँ[6] मेरी ॥

कुछ नीति पूर्ण शेर ·

हुआ करती हैं दुश्वारी ही से आसानियाँ पैदा।
बड़े नादान हैं, मुश्किलको जो मुश्किल समझते हैं ॥

गमो-इशरतके[7] हर पहलूको रखते हैं, निगाहोमें।
अज़लसे[8] जो मआले-गर्दिशे-आलम[9] समझते हैं ॥

खाकसारीका[10] है गाफिल ! बहुत ऊँचा मर्तबा।
यह ज़मीं वोह है कि जिसपर आसमाँ कोई नहीं ॥

---

[1]प्रेमी-जीवनकी व्यथा, [2]उपेक्षा, [3]प्रेम-मन्दिरमे; [4]प्रणाम; [5]यात्रा-मार्गमे, परदेशमे, [6]यात्रीदल; [7]दु ख-सुखके, [8]सृष्टिके प्रारम्भसे; [9]ससारचक्रका कारण; [10]नम्रता, सेवाभावका।

बन सके तो शमअ् बनकर रौनके-काशाना[1] बन।
वरना जलकर दफअ्तन ख़ाकिस्तरे-परवाना[2] बन॥

जेब[3] देती नही इन्सानको तलख़ीये-कलाम[4]।
गुफ़्तगूको सबबे-बरहमी-ए-दिल[5] न बना॥

बेफायदा है, सजदागुज़ारी[6] सुबह-ओ-शाम।
जब दिल ही झुक सका न सरे-बन्दगीके साथ॥

हदसे ज़्यादा चमने-दहरमें[7] उड़नेवाले।
देगी धोका तुझे बेज़ाब्तए-परवाज़[8] कहीं॥

तलबमें[9] दोनो आलमकी[10] झुका रक्खा है क्यों सरको ?
यह रस्मे-बन्दगी[11] इक दिन अज़ाबे-दायमी[12] होगी॥

वोह अपने हर क़दमपर है कामयाबे-मंज़िल[13]।
आज़ाद हो चुका जो तकलीदे-कारवाँसे[14]॥

ऐ महवे-निशाते फ़स्लेगुल[15]! अंजामे-ख़ुशी[16] गम होता है।
फूलोंकी तरह जो हँसते है, इक रोज़ वोह गिरियाँ[17] होते है॥

तदबीर[18] ही तेरी नाक़िस[19] थी, तक़दीरको तू इल्ज़ाम न दे।
कर सब्र ज़रा, कारे-मुश्किल[20], सब वक़्तपर आसाँ होते है॥

---

[1]मकानकी शोभा, [2]या प्रेमदीपपै जलकर पतगेकी खाक बन; [3]शोभा, [4]कटु वचन; [5]हृदयको चोट पहुँचानेका कारण; [6]नतमस्तक होकर ईश्वरके आगे गिरना, [7]ससाररूपी उद्यानमे, [8]बेसोची-समझी उडान; [9]अभिलाषामे, [10]इहलोक-परलोककी, [11]दिखावटी उपासना, [12]स्थाई परेशानी; [13]सफलयात्री, [14]यात्रीदलके अनुकरणसे; [15]सुखमे तल्लीन मौसमी फूल ! [16]खुशीका परिणाम आख़िर, [17]रोते है; [18]पुरुषार्थ, [19]व्यर्थ, हीन; [20]कठिन कार्य।

उनको तो जगाया सोते थे, जो राह्में ऐ फरियादे-जरस[1] !
जो चलते-चलते सोते हैं, उनको भी जगाना आता है ?

तू ख़ुद रहबर[2] है, ख़ुद बाँगेजरस[3] है, ख़ुद ही मंजिल है।
मुसाफिर ! फिर यह तक़लीदे-अमीरे-कारवाँ[4] कब तक ?

सूरते-नक़्शे-रहगुज़र[5] आजिज़ी[6] अख़्तियार कर।
अर्शकी[7] रफ़अ़तोपै[8] गर तुझको मुक़ाम चाहिए ॥

चन्द भिन्न-भिन्न रंगके शेर

जहाँमें सोजे-मुहब्बतका[9] तर्जुमा[10] न मिला।
ज़बाने-शमअ़पै परवानेका बयाँ न मिला ॥

कहाँ था नश्शनासे-चमन वोह दुनियामें।
बहारेगुलमें जिसे पहलुए-ख़िज़ाँ न मिला ॥

मैं रहनेजन्न हूँ, तू अख़्तयारका मालिक।
मेरे फ़सानेसे यह अपनी दास्ताँ न मिला ॥

अज़लसे गर्मसफ़र हूँ, मगर मुझे अबतक।
बिछड़ गया था मैं जिससे, वोह कारवाँ न मिला ॥

क़फ़समें और नशेमनमें रहके देख लिया।
कहीं भी चैन मुझे ज़ेरे-आसमाँ न मिला ॥

---

[1]यात्रीदलके ऊँटके गलेमे बँधी घण्टीने, [2]पथप्रदर्शक, [3]घण्टीकी आवाज, [4]यात्रीदलके नेताका अनुकरण, [5]पदचिह्नोंकी तरह; [6]नम्रता; [7]आकाशकी, [8]ऊँचाइयोंमें। [9]प्रेम-ज्वालाका; [10]बतानेवाला।

सभीने उनसे कहा हश्रमें फ़सानये-दिल।
मुझे यहा भी 'अलम' मौकये-बयाँ न मिला॥

हरेक नक्शे-क़दम रोज़े-हश्र देख लिया।
तलाश जिसकी थी मुझको वोह बेवफा न मिला॥

देख ऐ मुनअ़म[1] ! यही था मुझमें-तुझमे इम्तयाज़[2]।
तेरा कब्ज़ा था जहाँपर, मेरा कब्ज़ा दिलपै था॥

न देख इन गहरी नजरोसे मुझे ऐ देखनेवाले !
भरम खुल जायगा जालिम ! मेरे जज़्बाते-पिन्हाँका[3]॥

दबा रक्खा है सीनेमें जिसे तेरे असीरोने[4]।
कभी गुलशनमे वोह नाला[5] कफसकी दास्ताँ होगा॥

मै नालए-दिलसे काम लूँगा मुझीसे होगा यह काम मेरा।
सबाको[6] है क्या गरज़ कि उनतक वोह लेके जाये पयाम[7] मेरा॥

जो डूबना हो तो काफी है एक आँसू भी।
तेरा कुसूर कि तू गर्क़े-आब[8] हो न सका॥

अब बयाबाँसे गुलिस्ताँकी तरफ जायेंगे क्या ?
तेरे दीवाने फरेबे-रंगो-बू खायेंगे क्या ?
मुस्तकिल कोई न देगा क्या सबूते-सोज़े-इश्क !
जितने परवाने है सब ही जलके मर जायेंगे क्या ?

---

[1]धनिक, [2]अन्तर, भेद; [3]अन्तरग भावनाओंका; [4]कैदियोंने; [5]रुदन, आह; [6]हवाको; [7]सन्देश; [8]पानीमे डूब न सका।

सुन चुके जब दास्ताने-दर्द तो कहने लगे—
"और भी इसके सिवा कुछ आप फरमायेंगे क्या ?"
आशियाँ जिनका है जेरे-आतिशे-गुल बागबाँ !
हमलाहाये-बर्क़ोबारांसे[1] वोह घबरायेंगे क्या ?
दारपर दुनिया चढा ही देगी क्या मंसूरको ?
वाकिफानेराज़ सब ख़ामोश हो जायेंगे क्या ?

वोह कहाँ लज़्ज़ते-सोज़े-ग़मे-पिन्हा समझा ?
हिज्रमें जीनेसे मरनेको जो आसाँ समझा ॥
ज़र्रा-ज़र्रा था चमन अक्सेरुख़े-लैलासे ।
कैस दीवाना गुलिस्ताँको बयाबाँ समझा ॥

उस दिन 'अलम'को फितरते-ग़म[2] मरहमत[3] हुई ।
जिस रोज़ यह ज़मीन बनी, आसमाँ बना ॥

हमारी ख़ाकसारी बादमुर्दन भी नुमायाँ है ।
गलीमें उनकी उडता है, बहुत नीचा गुबार अपना ॥

बहरे हस्तीका अज़लसे[4] हूँ शनावर[5] लेकिन ।
आजतक वाकिफ़े-राज़े-तहे-दरिया[6] न हुआ ॥

नज़अमें[7] बहुत धीमी जुम्बिशें नफसकी[8] हैं ।
हैं करीब मंज़िलके आज कारवाँ अपना ॥

परफ़िशानीका[9] कफसमें मुझे मौक़ा न मिला ।
नोच डाला मेरे सैयादने जो पर निकला ॥

---

[1]बिजली-वर्षाके आक्रमणोंसे, [2]दुःखी स्वभाव, [3]प्रदान; [4]अनादिकालसे, [5]परिचित, [6]नदीके अन्तस्थलसे परिचित; [7]प्राणान्तकालमें; [8]इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं; [9]उड़ानका ।

देखिये अब कौन-सा तूफ़ाँ जगाता है हमें।
मुँह छुपाके सो रहे हैं दामने-साहिलसे[1] हम ॥
सामने मंज़िल है और आहिस्ता उठते हैं क़दम।
पास आकर हो रहे हैं दूर फिर मंज़िलसे हम ॥
कामयाबीमें भी हैं नाकामयाबे-ज़िन्दगी।
ऐन मंज़िलपर नहीं हैं, आश्ना[2] मंज़िलसे हम ॥

मज़ाकेग़म न पैदा कर सका मैं उनकी फितरतमें।
सुनाई बाग़वालोंको कफ़सकी दास्ताँ बरसों ॥

तेरी मरज़ीपै छोड़ दूँ किस तरह तूफ़ानमें किश्ती ?
तुझे ऐ नाख़ुदा ! नावाकिफ़े-साहिल समझता हूँ ॥

कोई रिन्दोंके इस ज़र्फ़े-नज़रकी[3] वुसअ़तें[4] देखे।
हर इक टूटे हुए साग़रको जामेजम समझते हैं ॥
निसारे-शमअ़ होकर बज़्ममें कहते हैं परवाने—
"कोई समझे न समझे, हम मआ़ले-ग़म समझते हैं" ॥

जो बयाने-इश्क़ भी समझे, ज़बाने-हुस्न भी।
आपकी महफ़िलमें ऐसा, राज़दाँ[5] कोई नहीं ॥

वफ़ाके परदेमें क्या-क्या जफ़ाएँ देखी हैं।
निगाहे-लुत्फ़पर अब मुझको ऐतमाद[6] नहीं ॥
मुझे यक़ीं है मगर दिलको क्या करूँ कि उसे।
किसीके वादये-फ़रदापै[7] ऐतमाद नहीं ॥

---

[1]नदी- तटसे, [2]परिचित, [3]दृष्टिकोणकी [4]उदारताएँ; [5]जानकार, [6]भरोसा; [7]भविष्यके वायदेपर।

नज़र हैराँ, ज़बाँ बहकी हुई-सी।
यह आप आख़िर कहाँसे आ रहे हैं ?
बयाँ करके सबब जोरो-जफ़ाका।
वफ़ाओंको मेरी शरमा रहे हैं॥

दिलके इत्मीनानका यूँ ही कोई सामाँ करें।
ऐतबारे-इनकलाबे-गर्दिशे-दौराँ करें॥

मेरी तूफ़ाँशनासी नाखुदा ! मुझको बचायेगी।
मैं तूफ़ाँमें निगाहे-मौजे-तूफ़ाँ देख लेता हूँ॥

क़ैदमें भी है मयस्सर ऐ जुनूँ ! लुत्फ़े-चमन।
ख़ूनके छींटोसे ज़िन्दाँको[1] सजा देता हूँ मैं॥

दिल मेरा बहलता है, तेरे ही तसव्वुरसे[2]।
इश्कके नतीजोसे गर्चे आशना[3] हूँ मैं॥

नही आदावे-जुनूँसे यह बहारें वाकिफ़।
वरना गुल बागमें यूँ चाक गरेबाँ कर दें ?

मेरी परवाज़ क्या आये नज़र तुमको चमनवालो !
तसव्वुरमें जो उड़ता हो, वोह महदूदे-नज़र क्यों हो ?

मिली तो क्या मिली सैयाद ! ऐसी आज़ादी।
जब एक शाख़े-नशेमनपै अख़्तयार न हो॥

हम अपने दिलको महफ़ूज़े-तमन्ना क्यों न रहने दें।
यह इक क़तरा लहू, सरगुश्तये-आहो-फ़ुग़ाँ[4] क्यों हो ?

---

[1]कारागारको, [2]ध्यानसे, चिन्तनसे, [3]परिचित;
[4]आह-रुदनसे दुःखी।

बदनसे रूह जाती है तो दिलको साथ ले जाये।
अमानत इश्क़ है जिसमें, वोह हिस्सा रायगाँ[1] क्यो हो ?

दिलको बना हरमनशी[2], तौफ़े-हरम[3] नही, न हो।
मानीये-बन्दगी[4] समझ, सूरते-बन्दगी[5] न देख ॥

न पूछ उसके तहम्मुलकी[6] वुसअ़तें[7] सैयाद !
कि दर्से-ज़ब्ते-फ़ुगाँ,[8] जिसने ज़ेरे-दाम[9] लिया ॥

कहीं बिजली, कहीं गुलची, कहीं सैयादका खतरा।
फले-फूलेगी इस गुलशनमें शाख़े-आशियाँ क्योंकर ॥

तवज्जह[10] सर्फ़[11] करता वाकई गर नाख़ुदा[12] अपनी।
तो क्यो साहिलसे टकरा करके किश्ती डूबती अपनी ॥

जुनूँवालोकी उरियानीपै[13] यूँ हँसना नहीं अच्छा।
मनायें ख़ैर अपने पैरहनकी[14] पैरहनवाले ॥

है ज़ाहिर उसपै चमनकी हक़ीक़तें जिसने—
शगुफ़्ता[15] लाल-ओ-गुलका मआल[16] देखा है ॥
नही है दिलसे तमन्नाये-वस्ल तक बाक़ी।
फ़िराक़े-यारमें इतना मलाल देखा है ॥

---

[1]व्यर्थ नष्ट; [2]काबेमे लीन कर [3]तीर्थकी प्रदक्षिणा; [4]उपासनाका तात्पर्य, [5]वाह्य उपासनाओको, [6]बरदाश्तकी, सब्रकी, [7]विशालता; [8]आहको रोकनेका पाठ; [9]जालमे, [10]ध्यान, [11]देता; [12]मल्लाह, [13]फटेहालपै, नग्नतापै, [14]परिधानकी, लिबासकी; [15]खिले हुए, [16]परिणाम।

सुना है फिर वोह सुनने आ रहे हैं, दास्ताँ मेरी।
इलाही आज दो रंगे-असर लाये ज़बाँ मेरी॥

जंजीरे-आहनीको[1] समझते थे शाख़े-गुल।
वोह हौसले शिकस्ता दिलोंमें कहाँ रहे ?

ज़र्फ़[2] उस कतरये-नाचीज़का देखे कोई।
ऐन दरिया हो मगर, सूरते-दरिया न बनें॥
ग़र्क़ हो-होके कई बार तो उभरे लेकिन।
फिर भी हम राज़शनासे-तहे-दरिया[3] न बने॥

—सलसबील

थके-माँदे भी मंजिलपर पहुँच जायें ब-आसानी।
कोई तदबीर ऐसी ऐ अमीरे-कारवाँ! कर ले॥

मुझको न देख शानेकरमपर[4] निगाह कर।
मुझसे ख़ता हुई है, मगर बेबसीके साथ॥

मंज़िले-अर्शपै दम लेनेको ठहरूँ तो मगर,
दम भी लेने दे मुझे लज़्ज़ते-परवाज़ कहीं॥

हरइक ज़र्रेमें जिसके सैकड़ों गुलशन हैं पोशीदा।
जुनूँकी राहमें ऐसा भी इक वीराना आता है॥

जा पहुँचता मंजिले-मकसूदपर अबतक 'अलम'।
कारवाँको ख़िज्रे-मंजिल गामज़न होने भी दे॥

---

[1]लोहेकी ज़ंजीरको; [2]हौसला, [3]दरियाके भेदी, [4]दयालुताके मर्तबे-पर।

मुझे मुस्तहक़े-अमानते-गमो-दर्दे-इश्क बना दिया।
यह था ऐतमादे-वफा उसे, फकत एक मुश्ते-गुबारपर ॥

नाख़ुदा डूब चुका, नाव है गर्के-तूफाँ।
हाय किस वक़्त मुझे यादे-ख़ुदा आती है ॥
वोह समझते है गुलिस्ताँमें चटकती है कली।
टूटनेकी जो किसी दिलकी सदा आती है ॥

मेरी ख़ुद्दारिये-वहशतपै तनकीदें[1] बजा लेकिन—
न देखा तुमने अपने इन्तजामे-जब्रे-महफिलको ॥

आदाबे-गुलिस्ताँ फ़र्ज़ सही, ताईदे-जुनूँ भी वाजिब है।
क्या जाने बहारें कब आयें, हम चाक गरेबाँ होते है ॥

शब-रोज़ मुहब्बत सीनेमें, पोशीदा अगर्चे है, फिर भी—
आहोंमें लरज़ते रहते है, अश्कोसे नुमायाँ होते है ॥
रुकते है कही दीवारोसे, थमते है कहीं ज़ंजीरोसे।
इज़हारे-जुनूँपर आमादा जब कैदिये-ज़िन्दा होते है ॥
जी भरके तड़प लेने दे उन्हे, रह-रहके ज़रा जलने दे उन्हे।
ऐ शमअ़की लौ ! यह परवाने इक रातके मेहमाँ होते है ॥
शिकिस्ता सोख़्ता भी और ख़िज़ाँदीदा भी है लेकिन —
ग़नीमत है चमनमें मेरी शाख़े-आशियाँ फिर भी ॥

मिलेगा लुत्फे-आज़ादी उन्हे क्या मौसमे-गुलमें ?
कफससे छूटकर गुलशनमें जो बेबालो-पर आये ॥

---

[1]आलोचनायें।

बहारे-गुलका मुज़दा[1] या नवीदे-वस्ले-जानाँ हो[2] ।
मुसीबतमें कोई शय वजहे-राहत हो नहीं सकती ॥
हक़ीक़त वोह मआले-इश्ककी क्या ख़ाक समझेंगे ?
हमारे हालसे भी जिनको इबरत हो नहीं सकती ॥

फूलोंसे पूछिये न सितारोंसे पूछिये ।
दिल क्या है अश्के-ग़मके शरारोंसे पूछिये ॥

तालिबे-इश्क न था हुस्न, तो वह मेरी तरफ़ ।
मुल्तफ़ित क्यों हुए पैग़ामे-नज़रसे पहले ?

तेरी नज़रें दे रही हैं, तुझको धोका पै-ब-पै ।
है गुबारे-दश्त दीवाने ! यहाँ महमिल कहाँ ?
हर ज़र्रा दे रहा है 'अलम' दावते-जमाल ।
लेकिन जहाँमें चश्मे-हक़ीक़त नगर कहाँ ?

इसी वास्ते है पैहम, नज़र इसपै बिजलियोंकी ।
है सजी हुई गुलोंसे मेरी शाख़े-आशियाना ॥

थी न आज़ादे-फ़ना कश्ती-ए-दिल ऐ नाख़ुदा !
मौजे-तूफ़ाँसे बची तो नज़रे साहिल हो गई ॥

कोई ऐजाज़े-सफ़र था, या फ़रेबे-चश्मे-शौक़ ?
सामने आकर निहाँ आँखोंसे मंज़िल हो गई ॥

मैंने यूँ कश्तीका रुख़ फिर सूये-तूफ़ाँ कर दिया ।
साज़गारे-दिल हवाये-दामने-साहिल न थी ॥

---

[1]बहारकी आमद, [2]प्रेयसीमिलनका सन्देश ।

कुछ मिटे-से नक़्शेपा भी हैं, जुनूँकी राहमें।
हमसे पहले कोई गुज़रा है यहाँ होते हुए॥

—कौसरोतसनीम

नज़्मोंके चन्द अशआर

मशाले-तमन्ना

•

किसीने सहने-चमनमें क़रीब हीं से सुना।
यह ख़ुश्क पत्तियोंसे उसकी आ रही थी सदा—
"उरूजे-हुस्नने[1] मुझको गिराया पस्तीमें।
कली ही रहता यह अच्छा था बाग़े-हस्तीमें॥
तबाहियोंका है सरचश्मा इन्तहा-ए-कमाल।
कमाल ही को न फिर क्यों कहे दलीले-ज़वाल"॥

है कामयाब वही इस जहाने-फ़ानीमें।
जो बेनियाज़े-तमन्ना है ज़िन्दगानीमें॥

वसन्त

• • • • • • • • •

वोह तोड़ती है जब फूल तो शाख़ें झुककर सजदा करती हैं।
उसकी रंगीन जवानीसे आईने पैदा करती हैं॥
फूलोंके आईनोंमें अपने अक्ससे वोह शरमाती है।
होंटोंसे तबस्सुम खिलता है, आँखोंमें हया थर्राती है॥
ख़ुद टूटके रंगीं फूल कुछ उसके दामनपर आ पड़ते हैं।
वोह दोशीज़ा हँस देती है, नज़रोंसे तारे झड़ते हैं॥

भरकर फूलोंसे दामन जब वोह अपने पाँव बढ़ाती है।
हर नक़्शे-क़दमपर होनेको कुरबान वसन्त आ जाती है॥

---

[1]सौन्दर्य्यकी उँचाईने।

यह दोशीज़ा[1] उस मौसमकी गोया इक ज़िन्दा देवी है।
है ज़िन्दगी उसकी चितवनमें, यह खुद ही बहारे-हस्ती है॥

—सलसबील

शबाब आ रहा है—

शबाब आ रहा है, शबाब आ रहा है।
दहकता हुआ आफताब आ रहा है॥
है अठखेलियोंपर चमनकी हवायें।
नये सरसे फिर इनकलाब आ रहा है॥

. . .

यह सूरज है मशरिक़में या मैकदेमें।
कोई लेके जामे-शराब आ रहा है॥
यह कौसे-कज़ह है कि बज़्मे-फ़लकसे।
मुगन्नी उठायें रुबाब आ रहा है॥
कँवल खिल रहा है कि हौज़े-चमनसे।
उभरता हुआ आफताब आ रहा है॥

.

—सलसबील

वफा

कहता है तुझे कोई बुरा कहने दे।
तू छोड़ न दामाने-वफा हाथोंसे॥
मिट्टीको ज़रा देख ब-चश्मे इबरत।
ज़िल्लतके एवज़ बरशती है गुलदस्ते॥

—कौसरो-तसनीम

२८ सितम्बर १९५३ ई०]

---

[1]कुआँरी लड़की।



'अफ़सर' मेरठी

[१८९८ — ई०]

हामिदअल्ला 'अफसर' १८६८ ई० मे उत्पन्न हुए। मेरठके रहनेवाले है। अरवी-फारसीकी उच्च शिक्षाके साथ-साथ अग्रेजीमे बी० ए० पास है, और लखनऊ इण्टर मीजियेट कॉलेजमे लेक्चरर है। शायरीका शौक वचपनसे था। मगर किसीपर प्रकट नही होते थे। सहपाठियोके आग्रहपर १६१६के एक मुशायरेमे आपने पहले-पहल गजल पढी। खूब दाद मिली। लेकिन फिर आप मुद्दतोतक मुशायरोमे नही गये। इसका कारण यही था कि आपको मिसरा तरहपर गज़ल कहना अच्छा नही मालूम होता था। लेकिन कलाम वरावर कहते रहे।

मुशायरोकी मिसरातरहपर गजल लिखनेसे 'अफसर' घवराते है। जो कुछ देखते और अनुभव करते है, उमग आनेपर उसीको शायरीका परिधान पहनानेका प्रयत्न करते है। आप गीत और नज्म भी लिखते है। लेकिन आपकी शायरीका श्रीगणेश गजलसे ही प्रारम्भ हुआ।

आपके स्वयके चन्द पसन्दीदा अशआर—

भटकती है नजरें मेरी हर तरफ।
खुदा जाने किस भेसमें तू मिले॥

यह जो चाहता है मेरा आज 'अफ़सर' !
अभी और तुमसे किये जाऊँ बातें ॥

हाय वोह जिसकी उम्मीदें हो ख़िज़ाँपर मौकूफ़ ।
शाख़ें-गुल सूखके गिर जाये तो काशाना बने ॥

बढ़ाके रीश[1] तू मस्जिदको क्या चला 'अफ़सर' ?
यह शक्ल अब कहीं होती नही नमाज़ीकी ॥

रखकर नज़रके सामने तसवीरे-ख़्वाबे-नाज़[2] ।
पहरो तेरे ख़यालमें बैठा रहा हूँ मैं ॥

दिलपर अपना बस चलता तो वहशत काहेको होती ?
और किसीसे क्या मतलब है ? तू ख़ुद क्या कहता होगा ॥

जो ग़म हदसे ज़ियादा हो, ख़ुशी नज़दीक होती है ।
चमकते हैं सितारे रात जब तारीक[3] होती है ॥

दिखावेके हैं सब यह दुनियाके मेले ।
भरी बज़्ममें हम रहे हैं अकेले ॥
अनोखे ख़यालोंकी महफ़िल जमाये ।
पड़े रहते हैं घरमें 'अफ़सर' अकेले ॥

कुछ तवज्जह ख़ास होती है अयाँ[4] ।
नाम ले-लेकर न कोसा कीजिये ॥

वाँ उनको यह गुमान कि दामन भी तर नहीं ।
याँ हाल यह कि आ गया पानी गले-गले ॥

---

[1]दाढ़ी; [2]प्रेयमीके स्वप्नकी तसवीर; [3]अँधेरी; [4]प्रकट ।

हर ख़िज़ाँके गुबारमें हमने।
कारवाने-बहार[1] देखा है॥
कितने पशमीना-पोश जिस्मोंमें[2]।
रूहको[3] तार-तार देखा है॥

अल्लाहरे जुनूँकी यह ज़र्रा नवाज़ियाँ।
बैठा हुआ हूँ दिलमें बयाबाँ लिये हुए॥

ज़माना ढूँड़ता है मुझको 'अफसर'।
ख़ुदा जाने कहाँ खोया गया मैं?

लिल्लाह यह तुम देखनेवालोसे न पूछो।
क्या चीज़ हो तुम देखनेवालोकी नज़रमें!

महवे-तलाशे-राहत,[4] तू यह भी जानता है?
कहते हैं जिसको राहत, वोह गमकी इन्तहा है॥

मज़ाहब क्या हैं? राहे-मुख़्तलिफ हैं, एक मंज़िलकी।
है मंज़िल क्या? जहाँ सब कुछ है, पर राहें नही होती॥

उफरे यह ज़ौके-इबादतकी अजाइबकारियाँ।
दिल कही है, मैं कही, सजदा कहीं है, सर कही?

मौत है वोह राज़, जो आख़िर खुलेगा एक दिन।
ज़िन्दगी है वोह मुअम्मा, जिसका कोई हल नहीं॥

---

[1]बहारका आगमन, [2]दुशालेसे ढके शरीरोमें; [3]आत्माको; [4]सुखचैनकी खोजमे लीन।

यह जो चाहता है मेरा आज 'अफसर' !
अभी और तुमसे किये जाऊँ बातें ॥

हाय वोह जिसकी उम्मीदें हों खिजाँपर मौकूफ ।
शाखें-गुल सूखके गिर जाये तो काशाना बनें ॥

बढाके रीश[1] तू मस्जिदको क्या चला 'अफसर' ?
यह शक्ल अब कहीं होती नहीं नमाजीकी ॥

रखकर नजरके सामने तसवीरे-ख्वाबे-नाज[2] ।
पहरों तेरे खयालमें बैठा रहा हूँ मैं ॥

दिलपर अपना बस चलता तो वहशत काहेको होती ?
और किसीसे क्या मतलब है ? तू खुद क्या कहता होगा ॥

जो गम हदसे जियादा हो, खुशी नजदीक होती है ।
चमकते हैं सितारे रात जब तारीक[3] होती है ॥

दिखावेके हैं सब यह दुनियाके मेले ।
भरी बज्ममें हम रहे हैं अकेले ॥
अनोखे खयालोंकी महफिल जमाये ।
पड़े रहते हैं घरमें 'अफसर' अकेले ॥

✓कुछ तवज्जह खास होती है अयाँ[4] ।
नाम ले-लेकर न कोसा कीजिये ॥

वाँ उनको यह गुमान कि दामन भी तर नहीं ।
याँ हाल यह कि आ गया पानी गले-गले ॥

---

[1]दाढी; [2]प्रेयसीके स्वप्नकी तसवीर; [3]अँधेरी; [4]प्रकट ।

हर ख़िज़ाँके ग़ुबारमें हमने ।
कारवाने-बहार[1] देखा है ॥
कितने पशमीना-पोश जिस्मोंमें[2] ।
रूहको[3] तार-तार देखा है ॥

अल्लाहरे जुनूँकी यह जर्रा नवाजियाँ ।
बैठा हुआ हूँ दिलमें बयाबाँ लिये हुए ॥

जमाना ढूँड़ता है मुझको 'अफसर' ।
खुदा जाने कहाँ खोया गया मैं ?

लिल्लाह यह तुम देखनेवालोसे न पूछो ।
क्या चीज हो तुम देखनेवालोंकी नजरमें !

महवे-तलाशे-राहत,[4] तू यह भी जानता है ?
कहते हैं जिसको राहत, वोह गमकी इन्तहा है ॥

मजाहब क्या हैं ? राहे-मुख्तलिफ हैं, एक मंजिलकी ।
है मंजिल क्या ? जहाँ सब कुछ है, पर राहे नही होतीं ॥

उफरे यह जौके-इबादतकी अजाइबकारियाँ ।
दिल कही है, मैं कहीं, सजदा कही है, सर कही ?

मौत है वोह राज, जो आखिर खुलेगा एक दिन ।
जिन्दगी है वोह मुअम्मा, जिसका कोई हल नहीं ॥

---

[1]बहारका आगमन; [2]दुशालेसे ढके शरीरोमे; [3]आत्माको; [4]सुखचैनकी खोजमे लीन ।

तारोंका गो शुमारमें आना मुहाल है।
लेकिन किसीको नींद न आये तो क्या करे ?

दुनियामें इक सकूँका ज़रिया हो जब यही।
इन्सान तुझसे लौ न लगाये तो क्या करे ?

ख़ुदा तौफ़ीक देता है जिन्हे, वोह यह समझते हैं।
कि ख़ुद अपने ही हाथोंसे बना करती हैं तक़दीरें ॥

न समझा जब हक़ीक़तको किसीने।
ख़ुदा पैदा किया हर आदमीने ॥

तुझको पा लेनेमें यह वेताब कैफ़ीयत कहाँ ?
ज़िन्दगी वह है जो तेरी जुस्तजूमें कट गई ॥

क़रीब है मेरी मंज़िल, करीब है शायद।
कि अब नहीं रही हिम्मत क़दम उठानेकी ॥

हाय ! अंजामे-तजस्सुसकी[1] अजाइब कारियाँ।
तुम मिले और ढूँढनेवाले तुम्हारे खो गये ॥

हम जिसको मौत समझते हैं, पैग़ामे-हयाते-जदीद है वोह।
यह फूल चमनमें जितने हैं, फिर खिलनेको मुरझाते हैं ॥

जब ख़ुशीका ख़याल आता है।
दिले-मायूस काँप जाता है ॥

---

[1]खोजके परिणामकी।

सुखमें होता है हाफिजा बेकार।
दुःखमें अल्लाह याद आता है॥

चमकती है यह बिजली अब्रमें या—
किसीसे कुछ इशारे हो रहे हैं॥
—निगार जनवरी १९४१ ई०

खौफ था जलनेका दिलके, तो दिया क्यो हो गये।
टूट जानेका अगर डर था असा[1] क्यों हो गये?
खेलना जब उनको तूफानोंसे आता ही न था।
फिर वोह कश्तीके हमारे नाखुदा[2] क्यो हो गये?

शहरकी फिक्रमें घुलनेको, शहरका काजी कौन बने।
अपना हामी खुद जो नही, उसका हामी कौन बने!
खुदको जो पा जाते हैं, दुनिया उनकी होती है।
जिसने खुदको छोड़ दिया, उसका साथी कौन बने!

५ अक्तूबर १९५२ ई०]

---

[1]लाठी; [2]मल्लाह।

अम्न लखनवी

[१८९९——   ई०]

मुंशी गोपीनाथ 'अम्न' १८९९ ई० मे लखनऊमे उत्पन्न हुए। १९१६ ई० मे उन्होने मैट्रिक पास किया। उसी स्कूलमे प्रसिद्ध उस्ताद 'अज़ीज़' उर्दू-शिक्षक थे। उनके ससर्गमे रहते हुए अम्नको भी शायरीका शौक हो गया। मैट्रिक करनेके वाद 'अम्न' म्यूनिस्पल कमेटीमें मुलाजिम हो गये। वहाँ रहते हुएआपने १९२० ई०मे मुख्तारीकी परीक्षा भी दी। १९२०से काग्रेस आन्दोलनमे आप भाग लेने लगे और आपने पहले-पहल १९२०मे ही लखनऊके एक काग्रेसी जल्सेमे अपनी एक नज्म सुनाई। स्कूल छोड़नेके वाद आप वैजनाथ 'फिगार'से इस्लाह लेने लगे जो कि 'आतिश' स्कूलके स्नातक थे।

१९२४मे आपने मुख्तारगीरीकी प्रैक्टिस भी की। १९३० और ३२मे आप जेल गये और वहांसे आकर दिल्लीके दैनिक उर्दू-पत्र 'तेज'मे सम्पादकीय विभागमे कार्य करने लगे। वहाँ तकरीवन १५ वर्पतक रहे। १९४२के आन्दोलनमें डेढ वर्पतक नज़र-वन्द रहे और १९४८मे दिल्ली प्रान्तीय सरकारके प्रेस ऑफीसरके उच्च पदपर प्रतिष्ठित थे और वर्त्तमानमें दिल्ली राज्यके मंत्री है।

अम्न साहव खद्दरपोश, सरलस्वभावी और सीधे-सादे है। गान्धी-वादी विचारोके है। वीसो मुशायरोंमें उन्हें सुना है। तरन्नुममें पढते हैं।

आपका १९५०में प्रकाशित २२४ पृष्ठका 'कारवाने मजिल' हमारे

सामने है। इसमें आपकी ७३ नज्में और १६ गजलें हैं। इन्ही गजलोंके चन्द अशआर दिये जा रहे हैं—

असीराने-क़फसकी आप बीती पूछते क्या हो ?
यहाँ ऐ 'अम्न' ! कज़्ज़ाकोसे बदतर पासबाँ देखे ॥

कहा शेख़से एक पीरेमुग़ाने—
कि "हर इकको देखो उसीकी नज़रसे"।
यह है 'अम्न' इन्साँकी पस्ती-सी पस्ती।
गुनहसे बचा भी तो दोज़ख़के डरसे ॥

कुछ अपना मर्तबा जानो, कुछ अपनी क़द्र पहचानो।
ज़मींपर बसनेवालो ! शिकवये-हफ़्त आस्मा कबतक ?

सुना है उनसे मुलाक़ात होगी महशरमें।
है एक और क़यामत वहाँ अगर न मिले ॥
कहीं फरिश्ते मिले, और कहीं मिले शैतान।
हो जिनमें शान तवाज़ुनकी वोह बशर न मिले ॥

बेगाने जो शुरूसे हैं उनका ज़िक्र क्या ?
अपने भी ग़ैर हो गये इसका मलाल है ॥

ज़िन्दगी बेख़तर पसन्द नहीं।
पुरसकूँ रहगुज़र पसन्द नहीं ॥

कोई शादमाँ, कोई अन्दोहगीं है।
सकूँकी अभी कोई सूरत नहीं है।
दमाग़ आस्मांपर ज़मींपर जबीं है।
इबादत यह कोई इबादत नहीं है ॥

तलाशे-मदावा, तलाशे-मसीहा।
यह कुछ और है, दर्दे-उल्फत नही है॥

द्वितीय महासमरमे अग्रेज-जर्मन युद्धमे अग्रेजोकी सहायता न की जाय, इसी बातको चन्द कितोमे यो बयान किया है—

बरबादिये-तुर्स्तांके हरइक सिम्त है आसार।
गुलशनमें है सैयाद बहम बरसरे पैकार॥
आपसके यह झगड़े है, नही तुझको सरोकार।
ऐ मुर्गे-गिरफ़्तार ! ख़बरदार ! ख़बरदार !!

सैयादोके झगड़ोसे तुझे काम नहीं है।
क्या मुर्गे-गिरफ़्तार तेरा नाम नही है॥

गुलशनमें लगे आग तू कर फ़िक्र न जिनहार।
ऐ मुर्गे-गिरफ़्तार ! ख़बरदार ! ख़बरदार !!
....

सैयादको लुट जानेका गो अपने ख़तर है।
फिर भी तेरे पिजरेपै वही सख्त नजर है॥
गुलशनमें जो होना है, वोह हो लेने दे इकबार।
ऐ मुर्गे-गिरफ्तार ! ख़बरदार ! ख़बरदार !!
....

२० अगस्त १९५३ ई०]

रम्ज़

मुहम्मद रमजान 'रम्ज' छपरा (विहार)के रहनेवाले है, और अदालतके किसी पदपर प्रतिष्ठित है। गम्भीर प्रकृतिके मिलनसार व्यक्ति हैं। मज़ाहिया रगमे शेर कहते है। लेकिन शक्लो-शबाहतसे यह अनुमान नही किया जा सकता कि ऐसी शान्त प्रकृतिका व्यक्ति भी जनताको हँसाते-हँसाते लोट-पोट कर सकता है।

आप अपने कलाममे केवल अग्रेजी काफियेका इस्तेमाल करके उसे हास्यमय बना देते है। वरना तमामका तमाम कलाम सजीदा-सा मालूम होता है, परन्तु काफियेका उपयोग होते ही हास्य प्रस्फुटित हो उठता है। सबसे पहले 'अकबर' इलाहाबादीने अपने कलाममे अग्रेजी शब्दोको समोकर मजाकका पहलू निकाला था। उसके बाद तो एक प्रथा-सी चल गई, परन्तु 'रम्ज'से पहलेके शायर अग्रेजी शब्द आवश्यकतानुसार शेरमे चाहे जहाँ समो देते थे, कोई बँधा हुआ नियम नही था। लेकिन 'रम्ज'की ख़ूबी ये है कि आप केवल काफिया अग्रेजीमे रखते है और वाकी समूचे शेरमे उर्दू-शब्द होते है। मुशायरेका मिसरा तरह कैसा ही क्यो न हो, आप अपने मजाकके मुताबिक अग्रेजी काफिये ढूँढ निकालते है। और उन्ही काफियोको शेरमे रखकर हास्य बखेर देते हैं। काफियेके अतिरिक्त शेरमे और अग्रेज़ी शब्द इस्तेमाल नही करते।

आपकी चन्द गज़ले जनाब अताउल्लाह पालवीने जुलाई १९४५के 'शायर'में प्रकाशित कराई थी, उनमेसे चन्द यहाँ साभार दी जा रही है—

हैं रकीबोसे तुम्हारे वास्ते फाइट[1] हनूज़।
वायेनाकामी कि तू, पाया नहीं राइट[2] हनूज़॥

---

[1]लड़ाई; [2]अधिकार।

आपने सूरत बनाई है यह किसके सोगमें ।
बाल हैं बिखरे हुए पोशाक है ह्वाइट[1] हनूज़ ॥
दर्दे-हिजराँके असर बाक़ी है अबतक जाने-जाँ !
फूलसे भी है यह जिस्मे-नातवाँ लाइट[2] हनूज़ ॥

क़त्लकी धमकीसे क़ातिल मैं तो डर सकता नहीं ।
देख ले है रिश्तये-उल्फ़त मेरा टाइट[3] हनूज़ ॥
ग़म किये, शेवन किये, नाले किये, तारे गिने ।
ख़त्म होनेपर न आई, हिज्रकी नाइट[4] हनूज़ ॥
उनको मेरी जाँनिसारीका भला क्यों हो यक़ीं ।
कहते हैं अपनी ग़लतफ़हमीको वोह राइट[5] हनूज़ ॥
इन बुतोंके इश्क़से क्यों जी मेरा घबरा न जाय ।
जानदें हम जिसपै वोह है 'काम'[6] और क्वाइट[7] हनूज़ ॥
बेकली हदसे बढ़ी है, दम लबोंपर आ गया ।
'रम्ज़'की जानिब मगर तुमने न की साइट[8] हनूज़ ॥

उक्त गजलमे केवल अंग्रेजीका काफिया रख देनेसे हास्यका फव्वारा छूटने लगता है, वरना पूरीकी पूरी गजल सजीदगी लिये हुए है । एक गजल और सुनिये—

उस शोख़से है मुझको मुहब्बत भी फीयर[9] भी ।
अरमानके हमराह नि[illegible] [10]
किस तरहसे मर जाऊँ [illegible] नश[illegible]
आँखोसे [illegible] है [illegible] तो [illegible] [11]

---

[1]सफेद, [illegible]
[7]चुप, पूर्णतया; [illegible]

आये हो तो दो-चार घड़ी बैठके जाओ।
हाजिर हैं तुम्हारे लिए मसनद भी चेअर[1] भी॥
इस ढंगके दिलबर तो जमानेमें बहुत हैं।
इस शक्लके इन्सान हैं दुनियामें रेअर[2] भी॥
बेकार हैं उम्मीदे-वफ़ा अहले-जफ़ासे।
सीनेकी तरह चाक हुआ आज लेटर[3] भी॥
सोजे-गमे-उल्फतसे तो खुद जलता हूँ ऐ 'रम्ज' !
और उसपै जलाती है मुझे और 'समर'[4] भी॥

एक मुशायरेका मिसरा तरह था—

"शिकन विस्तरकी कहती है कि दम निकला है मुश्किलसे"

काफिया मुश्किल, मुहमिल, वगैरह थे और रदीफ 'से'। रम्ज साहबने अपने मतलबके अंग्रेजी काफिये तलाश करके देखिये हास्यका क्या रंग भरा है—

तकाजा जज्बे-उल्फतका है यह रह-रहके पैडिलसे।
मेरी बालीपै उनको खींच ला तू आज साइकिलसे॥
मेरी शीरीं दहन तेरे लबे-शीरींका क्या कहना ?
हलावत इसको गोया मिल गई है कल शुगरमिलसे[5]॥
हसीनाने-जहाँ दिल लेके कितना जुल्म करते हैं।
मगर कानून कुछ नाफिज नहीं होता है कौंसिलसे॥
हमारी रहबरीको आये हैं, वाइज खुदाहाफिज।
उन्हें तो काम है इसलामके परदेमें टायटिलसे[6]॥

---

[1]कुर्सी, [2]दुर्लभ, असाधारण, [3]पत्र; [4]गरमी; [5]चीनीमिलसे, [6]उपाधिसे।

कहाँ मैं और कहाँ उनका हरीमेनाज़ ऐ हमदम !
मेरी तकदीर तो लिक्खी गई है, हार्ड पेन्सिलसे[१] ॥
शराबे-वस्ल हो या शर्बते-दीदार हासिल हो।
मरीज़े-इश्क अच्छा हो नहीं सकता किसी पिलसे[२] ॥
कोई उल्फ़तमे मरना तेशये-फरहादसे सीखे।
सदाये आफरी आती है, अबतक गोशये-हिलसे[३] ॥
ख़ुदाका कहर है ऐ 'रम्ज़' गुरबतमें बुख़ार आया।
हरारत बढ़ गई है डाक्टरके दिलशिकन बिलसे ॥

एक मुशायरेकी तरह थी—

"निगारख़ाना नही है दुनिया, निगारकी कुछ ख़बर नही है"

काफिया ख़बर, नजर वगैरह था और रदीफ 'नही है'। अब 'रम्ज़' साहबका कमाल देखिये—

पड़ा है किस मुखमसेमें[४] जाहिद ! हीअर[५] नहीं है, देअर[६] नहीं है।
बताओ उस नाज़नीका जलवा, जहाँ नहीं है, वेअर[७] नही है ॥
न समझो आँसू जो बह रहा है, शकिस्ता दिलका मेरे पसीना।
यही है कल्बो-जिगरका टुकड़ा, यह कतरा हरगिज़ टीअर[८] नही है ॥
हमारी किश्तीके नाख़ुदाने, भँवरसे शर्ते-वफा है बाँधा।
किसीका ख़तरा हमें नहीं है, किसीसे हमको फीअर[९] नही है ॥
तुम्हारे हाथोंसे पा रहे हैं, तुम्हारी महफिलमें जाम ऐदा[१०] !
जलील महफिलमें सिर्फ हम हैं, हमारा कुछ भी शेअर[११] नही है।

---

[१]सख्त पेंसिलसे; [२]दवाकी टिकियासे, [३]पर्वतसे, [४]झगडेमें, बखेड़ेमें; [५]यहाँ; [६]वहाँ, [७]कहाँ; [८]आँसू; [९]भय, अन्देशा; [१०]शत्रु, उर्दूका बहुवचन, [११]हिस्सा, भाग।

उदूसे बातें हो मुसकराकर, बना-बनाकर, चबा-चबाकर।
जो पूछे हम कुछ, बिगड़के बोलो, तरीका यह तो फेअर[1] नही है॥
तुम्हारे तर्जे-सितमके कुर्बों, तुम्हारे जोरो-जफाके सदके।
हमारी जाँ तो गरां नही है, हमारा सर तो डीअर[2] नही है॥
बेचारे जाहिदकी अहलियाने कहा यह इक दिन बिगडके उनसे।
"जरा तो सोचो, जरा तो समझो, हमारा कोई हीअर[3] नही है॥
मुकामे-इबरत है दहरे-फानी, पड़े हैं जंगलमें 'रम्ज' अब वोह।
जमाना घेरे हुए था जिनको, कोई अब उनके नीअर[4] नही है॥

एक मुशायरेका मिसरा तरह था—

"जवाबेखत मुझे लिखता है वोह खूने-कबूतरसे"

उसपर आपने यूँ तबा आजमाई की है—

चला जब काम मिस्टरका खुशामदसे न लेक्चरसे।
हुए इमदादके ख्वाहाँ वोह बटलरसे, स्वीपरसे[5]॥
चले वोह दो कदम और इक क़यामत हो गई बरपा।
सदाये अल्लामाँ आने लगीं इक-एक क्वाटरसे॥

निफाको-इफ्तराको बुग्ज़का आलम मुआज़ल्ला।
न बेटा बापसे खुश है न भाई अपनी सिस्टरसे[6]॥
अदावतने जो ले ली है जगह महरो-मुहब्बतकी।
कोई नालाँ है अपनोसे कोई उलझा है नेबरसे[7]॥
वोह आये और हैं मसरूफे-गिरया मेरी मय्यतपर।
खड़े नहला रहे हैं वोह मुझे आँखोके वाटरसे[8]॥

---

[1]स्वच्छ; [2]मूल्यवान; [3]उत्तराधिकारी; [4]समीप; [5]महतरसे; [6]बहनसे; [7]पड़ौसीसे; [8]पानीसे।

गरानीमे गरीबोंकी मदद होनी नहीं मुश्किल।
अगर हुक्काम कुछ लें काम, अपनी खास पावरसे[1]॥
जो है इस वक़्तकी दुश्वारियाँ यह दूर कर देंगे।
यही उम्मीद वासिक है 'उमर' जैसे कलक्टरसे॥
जवाबे-ख़त मुझे ख़ूने-कबूतरसे वोह लिखते हैं।
मुझे वो भेजते हैं यूँ पयामे-मर्ग लेटरसे॥
बसीरत शर्त है मस्तूर जलवा है हर इक शैमें।
नज़र आते हैं हमको 'रम्ज़' वोह हर एक 'पिक्चर'से[2]॥
बड़े ही संगदिल होते हैं बुत राज़ी नही होते।
ख़ुशामदसे न मिन्नतसे, समाजतसे न टीअरसे[3]॥



[1]अधिकारोसे; [2]चित्रसे; [3]आँसूसे।



'फ़रहत' कानपुरी

[१९०५-१९५२ ई०]

श्री गंगाधरनाथ 'फरहत'का जन्म १६०५ ई०मे कानपुरके एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवारमे हुआ। वकालत-पेशा आपके परिवारमे सात पुश्तसे चला आ रहा है। आपके पिता स्वर्गीय श्री विश्वम्भरनाथ निगम और बाबा रायसाहब देवीसहाय निगम कानपुर जिलेके प्रमुख वकीलोमे-से थे। कानपुर और इटावे ज़िलोमे आपकी जमीदारी थी।

१६३० ई०मे आपने बी० ए० किया और उसी वर्ष असहयोग आन्दोलनमे छ मासको जेल गये। जेल जाते समय आप नगर कांग्रेस कमेटी कानपुरके प्रधान मत्री थे। जेलमे आपका स्वास्थ्य खराब हो गया था। १६३२ ई०मे आपने प्रथम श्रेणीमे वकालत पास की। विद्यार्थी अवस्थामे आप लखनऊ विश्वविद्यालय यूनियनके अध्यक्ष तथा विश्वविद्यालय पत्रिकाके सम्पादक भी रहे। १६३३ ई०से आपने कानपुरमे वकालत प्रारम्भ की और अल्पकालमे ही नगरके प्रसिद्ध वकीलोमे आपकी गणना होने लगी।

शायरीकी ओर रुचि आपकी किशोरावस्थासे ही थी। आप नज्म,

तल्ख़ियाँ[1] दे ताकि एहसासे-हलावत[2] भी तो हो।
सरदियाँ दे ताकि इमकाने-हरारत[3] भी तो हो॥
दर्दे-फ़ुरकत[4] दे, कि मिलनेका मज़ा मालूम हो।
कल्बे-अफ़सुर्दाको[5] खिलनेका मज़ा मालूम हो॥
गुमरहीदे[6], ताकि रंगे-रहबरी[7] कायम रहे।
बंदगी दे ताकि शाने-दावरी[8] दायम[9] रहे॥

ऐ मेरे माबूद मेरे हर गुनहकी दे सज़ा।
हाँ मगर मकबूल हो ख़ुद ऐतमादीकी[10] दुआ।

रुबाइयात

६२मेसे २२ दी जा रही है—

तफ़रीहका सामान नहीं है कोई,
तसकीनका इमकान नहीं है कोई।
मरनेका यहाँ ख़ौफ़ो-ख़तर है किसको,
जीनेका अरमान नहीं है कोई॥

मंज़िल कैसी कयाम नामुमकिन है,
रस्तेमें कोई मुकाम नामुमकिन है।
है पाये तलबमें इतनी कूवत बाकी,
रुकनेका ख़याले-ख़ाम नामुमकिन है॥

---

[1]कड़वाहट; [2]मिठासका आभास; [3]गरमियोका अस्तित्व मालूम दे; [4]विरह-व्यथा; [5]मुरझाये हुए हृदयको; [6]पथ भूलना; [7]पथ-प्रदर्शकका महत्त्व; [8]ईश्वरकी गरिमा; [9]स्थायी [10]आत्मविश्वासकी प्रार्थना।

कमबख़्त ज़रा सोच यह क्या करता है,
नाकामिये-क़िस्मतका गिला करता है।
पस्तीको भी मिलती बलंदी लेकिन,
हर बातका इक वक़्त हुआ करता है॥

अपना नही इर्फ़ान[1] है तौबा-तौबा,
इन्सान भी इन्सान है तौबा-तौबा।
हरचंद तरक़्क़ी तो बहुत की फिर भी;
दो पावोंका हैवान है तौबा-तौबा॥

हरचंद कि हुशियार है तौबा-तौबा,
ख़ुद अक़्ल ही बेकार है तौबा-तौबा।
इन्सानकी मजबूरिये-पैहमकी[2] कसम,
कहने ही को मुख़्तार है तौबा-तौबा॥

यह रीशो[3]-लबो-शराब तौबा-तौबा,
ऐ शेख़! यह इनक़लाब[4] तौबा-तौबा।
वह दावये-पिंदो-वाज़[5] और यह जुरअत,
मैख़ानेमें हैं जनाब तौबा-तौबा॥

जन्नतकी ये बूदो-बाश तौबा-तौबा,
हूरोंकी सदा तलाश तौबा-तौबा।
गिलमाँसे हम-आ-गोशिये पैहमकी हवस,
ऐ रिन्दे बदक़िमाश तौबा-तौबा॥

---

[1]ज्ञाता, स्वयंको नही जानता; [2]सदाकी मजबूरियोकी; [3]सफेद दाढ़ी; [4]परिवर्त्तन; [5]व्याख्यानदाता होनेका गर्व।

औरोंपर जब एतराज कर जाता हूँ,
मौत आये न आये मैं तो मर जाता हूँ।
दुनियाके गुनहपै कौन उठाये उँगली,
अपने ही गुनाहोंसे डर जाता हूँ॥

कलतक जो मनाजिर थे ये फीके-फीके,
हम करते भी क्या जख्मे-जिगरको सीके।
तुम आये तो झूम उट्ठी है डाली-डाली,
जैसे कोई दोशीजा चली हो पीके॥

माना कि है दुख-दर्द हमारा भी बहुत,
एहसान मेरे सर है तुम्हारा भी बहुत।
वादा न सही वाद-ये-वादा ही सही,
बहतेको है तिनकेका सहारा भी बहुत॥

तेरी जन्नत तुझे मुबारक या रब!
तेरी नेमत तुझे मुबारक या रब!
मुझको तो मिली मेरे गुनाहोंकी सजा,
तेरी रहमत तुझे मुबारक या रब!

चन्द गजलोंके शेर

दिलके आईनेकी सब गर्द साफ हो गई।
मिट गईं कुदूरतें वोह जो मुसकरा दिया॥
बार-बार तोड़कर बार-बार जोड़कर।
रिश्तये-खुलूसको खेल ही बना दिया॥

इश्ककी हस्ती भी क्या है?
एक इशारा सो मुबहम।

हुस्नकी साथी कुल दुनिया।
इश्कका रक्खे कौन भरम ?
इश्कका असली नाम जुनूँ।
दख़्ले-ख़िरद है 'फ़रहत' कम॥

घट चली क्यों निगाहे-करम सच बता।
दर्दे-उल्फ़तमे शायद कमी आ चली॥
जब निगाहोमे गुलशन समाने लगा।
ख़ारो-ख़समें भी दोशीज़गी आ चली॥

दिलकी बाजी है जानकी बाजी।
दिल लगाना कोई मज़ाक नही॥

न मैं शेख़ो-मुरशिदो-पीर हूँ, न लकीर ही का फकीर हूँ।
मैं मिलूँगा अपनी ही राहपर, कि वतनका कल्बो-ज़मीर हूँ॥

तकसीमे-वतन तोहफ़ये-बिरटिश था सरासर।
यह राज़ न समझा कोई अफ़सोस सद अफ़सोस॥

[चन्द किते

लगते ही आँख अहदे-जवानी गुज़र गया।
झोका नसीमका इधर आया उधर गया॥
'फरहत' कि जिसके दमसे था हंगामये-हयात।
सुनते हैं वोह गरीब तेरे गममें मर गया॥

कुछ ऐसी बहकी-बहकी-सी बातें हैं शेखकी।
कहनेको आदमी है, मगर खा गया है घांस॥

अब लीडरोंकी बातें भी ऐसी है इन दिनों।
क़ानून ऐसे बनते है, जैसे कि ठूँस-ठाँस ॥
बैलोके आगे रखके चलाते है गाडियाँ।
कहते है खेत बोइये मिलती नहीं है घाँस ॥
अल क़िस्सा बात ये है कि बँगलेके इर्द-गिर्द।
ग़ल्ला अगर न बो सकें 'फरहत' तो बोये बाँस ॥

न खानेको रोटी, न कपडा बदनको।
दुआयें दिये जाओ अहले वतनको ॥
कभी रंग लायेगा, ख़ूने-शहीदाँ।
अभी और सींचो, लहूसे चमनको ॥
अभी और सँवरी रहे तिरछी टोपी।
वतन ख़ूब समझेगा इस बाँकपनको ॥
इधर क़ैदे-खद्दर उधर सूत मिलका।
दो रंगोंमें रक्खोगे कबतक वतनको ?
न लट्ठा मयस्सर, न गबरून हासिल।
तलब कौन करता है अब गुलबदनको ॥
हमारा लहू रंग लाया है 'फ़रहत'!
हमींसे मिला था लहू इस चमनको ॥

२० जून १९५३ ई०]



माहिर-उल-क़ादिरी

'जज़्बाते माहिर' और 'महसूसातेमाहिर' दो संकलन माहिर साहबके हमारे समक्ष है। पहलेमे १३१ पृष्ठोमे आपकी नज्मे और गजले है दूसरेमे १६० पृष्ठोमे ५८ नज्मे और ६६ गज़ले है। प्रथम संकलनसे ३८ और द्वितीयसे ३६ अशआर पेश किये जा रहे है। आपका परिचय न तो आपकी उक्त दोनो पुस्तकोमें मिला और न हमें कही औरसे प्राप्त हो सका। आप इस युगके अच्छे शायरोमें-से एक हैं; और पाकिस्तान बननेके बाद करॉची रहने लगे है।

उस शोख़की[1] अदाये-तग़ाफुलको[2] क्या कहूँ ?
वादेका[3] जिक्र आते ही अनजान हो गया ॥

न ग़मख़्वारोका[4] अहसॉ है, न गैरोकी[5] शिकायत है।
वही ले-देके इक दिल था जो हर मौकेपै काम आया ॥

हर चीज़ अपनी-अपनी जगहपर है कामयाब[6]।
ज़र्रे[7] भी बेमिसाल, सितारे[8] भी लाजवाब ॥

---

[1]चचल प्रेयसीकी, [2]उपेक्षाभरी अदाये; [3]दिये हुए वचनोका; [4]सहानुभूतिकर्त्ताओका, [5]शत्रुओकी, [6]सफल, पूर्ण, [7]धूल-कण; [8]तारे।

हमनशीं[1] ! कुंजे-कफसमें[2] मुतमइन[3] होकर न रह ।
वरना हर्फ़[4] आयेगा तेरी जुरअते-परवाज़पर[5] ॥

यास[6] है काफरीका दूसरा नाम ।
हिम्मते-सईए-रायगाँकी[7] कसम ॥

पैमाँ शिकन बुतोंकी[8] अल्लाहरे अदायें ।
लफ़्ज़ोंको याद रखकर मफहूम[9] भूल जायें ॥
दर्दो-अलम[10] सकूँकी[11] हदसे गुज़र चुके हैं ।
अब आप दर्देदिलकी तस्कीनको[12] न आयें ॥

तू कि अफसोसो-नदामतके[13] सिवा सब कुछ है ।
मैं कि अफसोसो-नदामतके सिवा कुछ भी नहीं ॥

मैं हुस्नके हर ज़ुल्मको, हर जौरको[14] सहकर ।
औरोंके लिए हुस्नको आसान बना दूँ ॥

आपकी हश्रख़िरामीमें[15] कमी क्यों आये ?
कोई पामाल[16] जो होता है तो हो जाने दो ॥
हमदमो[17] ज़िक्रे-तमन्नाके[18] लिए यह उजलत[19] ।
उनके बिखरे हुए गेसू[20] तो सँवर जाने दो ॥

---

[1]पडौसी; [2]पिंजरेके कोनेमे [3]निश्चिन्त, [4]लाछन, [5]उड़नेकी क्षमतापर, [6]निराशा, [7]असफलतामे भी साहस रखना, [8]वायदा भूल जानेवाले प्रेम-पात्रोकी, [9]तात्पर्य्य, [10]दुख, [11]चैनकी; [12]शान्ति देनेको, [13]खेद और बदनामीके; [14]जबर्दस्ती; [15]प्रलयकारी चालमें, [16]मिटता; [17]साथियो, [18]मनकी बात कहनेको; [19]इतनी शीघ्रता, बेचैनी, [20]बाल ।

सरबस्ता इक फरेब है दुनियाये आबो-गिल।
हर शयको उसकी जाहिरी हदसे बचाके देख॥

जरा दरियाकी तहतक तू पहुँच जानेकी हिम्मत कर।
तो फिर ऐ डूबनेवाले किनारा ही किनारा है॥

जो मानूसे[1]-मिजाजे-हुस्न हो उसके लिए 'माहिर'!
तगाफुल ही तवज्जह है, सितम ही महरबानी है॥

लज्जते-जौके-वफासे[2] फितरतन महरूम है।
हुस्न कहते है जिसे, जालिम नहीं, मजलूम[3] है॥

यूँ कर रहा हूँ उनकी मुहब्बतके तजकरे[4]।
जैसे कि उनसे मेरी बडी रस्मो-राह थी॥
महशरमें एक हर्फ भी कोई न कह सका।
उनके सितमकी गर्चे खुदाई[5] गवाह थी॥

आरजूये-मर्गमें[6] भी है सकूने-दिल[7] निहाँ[8]।
हर खुशीसे इश्कको महरूम[9] होना चाहिए॥
शिकवये-बेदाद[10] भी है इक तरहका इन्तकाम[11]।
इश्कको मजलूम[12] ही मजलूम रहना चाहिए॥

मैं समझता हूँ वोह पामाले-गम[13] अच्छा ही रहा।
जिसपै ऐ दोस्त! तेरी चश्मे-इनायत[14] न रही॥

---

[1]परिचित, [2]नेकीके आनदसे, [3]अत्याचार पीडित, [4]उल्लेख; [5]जनता; [6]मृत्युकी कामनामे; [7]दिलका चैन, [8]छिपा हुआ; [9]रहित; [10]अत्याचारोकी शिकायत, [11]बदला; [12]अत्अयाचार पीडित; [13]गमो द्वारा मिटाया हुआ, [14]कृपादृष्टि।

यह तो सब सच है आप मुझपर करम[1] फ़रमायेंगे।
लेकिन इतना ध्यान रहे, लोग बहुत बहकायेंगे॥
रुसवाई[2] बेकार नहीं, नाकामी काम आयेंगी।
इन्हीं चन्द लकीरोंसे अफसाने बन जायेंगे॥
उसने आनेवालोंका बढ़कर इस्तकबाल[3] किया।
शमअ़को यह मालूम न था परवाने जल जायेंगे॥

हमनशीं[4]! शायद चमनमें आनेवाली है बहार।
बिजलियोंकी ज़दमें है इक शाख़ मुरझाई हुई॥

मैं वोह कि तुमको सौंप दिये जानो-दिल तमाम।
तुम वोह कि तुमसे मुझको तसल्ली न दी गई॥

बिजली कभी चमकी, कभी गुलचीं नज़र आया।
जबतक मैं नशेमनमें हूँ सौ तरहका डर है॥

शिकस्तोंपर शिकस्तें खा रहा है रज़्मे-हस्तीमें[5]।
मगर इन्साँकी ख़ुदबीनी[6], ख़ुदआराई नही जाती॥

हस्तिये-इन्साँ भी क्या अल्लाहोअकबर चीज़ है।
इक मुअम्मा[7] है कि सारी उम्र समझा कीजिये॥

बाबे-ज़िन्दाँ[8] बन्द, गुलशन दूर, ज़ख्मी बालो-पर।
क़ूव्वते-परवाज़[9] फिर भी आज़मानी चाहिए॥

---

[1]महरबानी; [2]बदनामी; [3]स्वागत; [4]पड़ौसी; [5]जीवन-संग्राममे; [6]अहमन्यता; [7]पहेली, गुत्थी; [8]बन्दीगृहका द्वार; [9]उड़नेकी शक्ति।

जब अज़लके[1] रोज़ तकदीरें रकम[2] होने लगीं।
एक इक ज़र्रा पुकार उट्ठा "जवानी चाहिए"॥
मुझको घर बैठे मयस्सर है बहारें खुल्दकी[3]।
ऐ ख़याले-यार तेरी महरबानी चाहिए॥

अल्लाह वोह घड़ी न दिखाये कि हिज्रमें।
कहना पड़े कि दर्दे-मुहब्बत अज़ाब है॥

कहीं नाकामियोंसे हौसले भी पस्त होते हैं।
मुझे अफसोस तुझपर हिम्मते-मरदाना आता है॥

पुतलियाँ आख़िरी गर्दिशमें हैं अब भी आ जाओ।
रस्म-की-रस्म तमाशे-का-तमाशा भी है॥

दिल मुझे बख़्शा गया था तेरी उल्फतके लिए।
तेरा दीवाना न बनता मैं कोई दीवाना था॥

आ मैं तुझे बता दूँ राज़े-ग़मे-मुहब्बत[4]।
अहसासे-आरज़ू[5] ही तकमीले,-आरज़ू[6] है॥

हम डूबनेवाले, मौजोंकी तौहीन गवारा क्या करते?
कश्तीका सहारा क्यों लेते, साहिलकी[7] तमन्ना क्या करते॥
बिजलीकी चमक, बादलकी गरज, पुरज़ोर हवा तारीकफ़िज़ा[8]।
खुद आग नशेमनको दे दी, तिनकोंपै भरोसा क्या करते?

---

[1]सृष्टिके प्रारम्भमें; [2]लिखी जाने लगी; [3]जन्नतकी, [4]प्रेमके दुःखका भेद, [5]इच्छाकी भावना; [6]इच्छाओंकी अधिकता; [7]किनारेकी; [8]अँधेरा वातावरण।

आपके ग़मकी महरबानीसे।
दिल है बेज़ार[1] शादमानीसे[2] ॥
मैं तो क्या हश्र माँगता है पनाह।
यह तेरी उठती हुई जवानीसे ॥
ले लिया है फ़िज़ाए-महशरने[3]।
एक टुकड़ा मेरी कहानीसे ॥
दिल है बेचैन रात-दिन 'माहिर'!
फ़ायदा ऐसी ज़िन्दगानीसे ?

ऐ बादे-चमन[4] तुझको न आना था क़फ़ससे।
तूने तो मेरी क़ैदकी मीयाद बढ़ा दी ॥
वोह चैनसे बैठे हैं, मेरे दिलको मिटाकर।
यह भी नहीं अहसास कि क्या चीज़ मिटा दी ॥

मैं क़ायल हूँ दैरो-हरमका[5] भी लेकिन—
तेरा आस्ताँ फिर तेरा आस्ताँ है ॥
मुहब्बतके रहरवको[6] तनहा न समझो।
तलब[7] राहबर[8] है, जुनूँ[9] पासबाँ[10] है ॥

ऐशो-ग़मसे फ़राग़[11] हासिल है।
बेहिसी[12] पूजनेके क़ाबिल है ॥

दिल तमन्नासे है कितना बेज़ार।
ठोकरें खाके समझ आई है ॥

---

[1]बेचैन; [2]ख़ुशीसे, [3]क़यामतके वातावरणने, [4]उद्यानकी हवा, [5]मन्दिर-मसजिदका, [6]यात्रीको; [7]इच्छा, [8]पथ-प्रदर्शक; [9]उन्माद, [10]रक्षक, [11]छुटकारा; [12]अकर्मण्यता।

दीदके[1] क़ाबिल मरीजे-हिज्रका[2] अंजाम है।
जानिबे-दर[3] है नजर लबपर किसीका नाम है॥
हमनशी[4]! मुझको नहीं राहतसे[5] कोई दुश्मनी।
दिलको क्या कहिये कि जालिम ख़ूगरे-आलाम[6] है॥

चमनमें रोग है उस बदनसीब गुंचेका।
जो एक रात भी जी भरके मुसकरा न सका॥
तेरे शबाबका आलम अरे ख़ुदाकी पनाह।
वोह जोश था कि जिसे तू भी ख़ुद दबा न सका॥
जमानाभरको तबाहो-ख़राब कर डाला।
तेरी नजरपै मगर कोई हर्फ़ आ न सका॥

दिल दिया, दिलको लज्जते-गम दी।
सारी आफत मुझीपै डाल गये॥
अपनी इक-इक अदाकी चाही दाद।
मेरी बातें हँसीमें टाल गये॥
इस अदासे वोह बेनकाब हुए।
एक परदा नजरपै डाल गये॥

तेरे होंटोंपै हलकी-सी हँसी मालूम होती है।
मुझे सचमुच बनफ़्शेकी कली मालूम होती है॥
जो तुमसे हो सके तो सिर्फ़ दमभरको ठहर जाओ।
मुझे यह साँस शायद आख़िरी मालूम होती है॥

---

[1]देखने योग्य; [2]विरह-पीडितका, [3]द्वारकी ओर, [4]पड़ौसी; [5]चैनसे, [6]दु:खोंका अभ्यस्त।

उस वक़्त वोह फ़रमायेंगे तकलीफ़े-मदावा[1]।
जब दर्द मेरा क़ाबिले-दरमाँ[2] न रहेगा॥
दिल ही से है वाबस्ता[3] यह हंगामये-हस्ती[4]।
डूबा यह सफ़ीना[5] तो यह तूफ़ाँ न रहेगा॥

दर्द ही अब है जिन्दगी दिलकी।
ज़हमते-चारागरको[6] क्या कहिये॥

जब उनको मुझे अपनी महफ़िलमें बुलाना था।
पहले मेरी नज़रोंको आदाब सिखा देते॥

ख़ुदा करे कि न कम हो बहारे-मैख़ाना।
यह बज़्म वोह है, जहाँ बिन बुलाये जाते हैं॥

मैंने कुछ फ़ितरत ही पाई है अजब मुश्किल पसन्द।
मेरी हर मुश्किलको मुश्किलतर बनाते जाइए॥

मंज़िलमें मुहब्बतकी हस्ती ही रुकावट है।
कल बज़्ममें कहता था जलता हुआ परवाना॥

मेरे हाले-दिलकी किस सूरतसे रुसवाई हुई।
रोक ली ज़ालिमने होंटोंपर हँसी आई हुई॥

याद जब ऐय्यामे-रफ़्ताकी कहानी आ गई।
देखता क्या हूँ कि हर शयपै जवानी आ गई॥

---

[1]चिकित्सा करनेका कष्ट; [2]इलाजके योग्य, [3]सम्बन्धित; [4]ज़िन्दगीका जोर-शोर, [5]नौका, [6]चिकित्सककी परेशानीको।

अब उनका इन्तख़ाब[1] करेगा यह फ़ैसला।
उल्फ़त बुलन्द है कि तमन्ना बुलन्द है॥

उसके ही तसव्वुरसे[2] है अश्कोंकी रवानी[3]।
जो एक तबस्सुमसे[4] ज़मानेको हँसा दे॥

ख़ुद्दारिये-कमालकी[5] रुसवाइयाँ[6] न पूछ।
बाज़ारे-ज़िन्दगीमें है 'माहिर' हुनर-फ़रोश[7]॥

आहपर ख़फ़गी नहीं है बेसबब।
बातकी समझी गई गहराइयाँ॥

वोह भरी बज़्ममें आये है जो पैमाना बकफ़।
शेख़ भी साक़िये-मयख़ाना हुआ जाता है॥

पुतलियोंकी आख़िरी गरदिशकी साअ़त आ गई।
आनेवाले! आ मैं कबतक रास्ता देखा करूँ?

तकमीले-आशिक़ीको[8] बस दो ही सूरते हैं।
महवे-नियाज़[9] बन जा, या बेनियाज़[10] हो जा॥

४ फरवरी १९५३ ई०]

---

[1]चुनाव; [2]ध्यानमे; [3]बहाव, [4]मुसकानमे; [5]हुनरके स्वाभिमानकी [6]बदनामियाँ [7]हुनर को बेचता है, [8]प्रेमाशक्ति-चरमसीमाकी; [9]नम्रतामे लीन, [10]अभिलाषाओंका त्यागी।

'शौकत' थानवी



शौकत थानवी साहब उर्दूके ख्यातिप्राप्त परिहास-लेखक हैं। आपकी कई पुस्तकें हिन्दीमे भी अनूदित हो चुकी है। शायरीमे आप 'आसी' उलदनीके[1] शिष्य हैं और गजल व्यंगात्मक न कहकर सजीदा कहते हैं। पहले आप लखनऊमे रहते थे। पाकिस्तान बननेके बाद लाहौर चले गये हैं। वहाँ सम्भवत. आप रेडियो विभागमे पब्लिसिटी-विभागको देखते हैं। आपका लिखा 'काजीजी' परिहास रूपक हर सोमवारको लाहौर रेडियोसे प्रसारित होता रहता है।

इस हदपै हैं जो कुफ्र तो अब क्या कहे इसे।
इसियाँ[2] मेरी निगाहमें इसियाँ नहीं रहा॥

खुदाई है खुदाकी, खाकसे इन्साँ बना देना।
तुम्हारा खेल है इन्साँको मिट्टीमें मिला देना॥

यही मानी हैं ऐ 'शौकत'! बुलन्दो-पस्तके शायद।
निगाहोंपै चढ़ाना और नजरोंसे गिरा देना॥

---

[1]आपका परिचय चौथे भागमे देखिये; [2]पाप।

हविस[1] जिसको सिखा दे तालिबे-दीदार[2] हो जाना।
उसे क्या आयगा महवे-ख़याले-यार हो जाना॥

उठाये दस्ते-दुआ ऐसे वक़्तमें मैंने।
जब इक जहाँकी दुआओंसे हाथ उठाना था॥

वोह किस खतापै हुए दुश्मनीको आमादा।
उन्हे तो मैंने कभी दोस्त भी न जाना था॥

गिला है किश्तिये-उम्रे-रवाँसे[3] ऐ 'शौकत'!
बची वहाँसे जहाँ उसको डूब जाना था॥

कहाँ तासीरका[4] पहलू, कहाँ वोह दास्ताँ अपनी।
तुम्हारी महरबानी थी, मेरा हुस्ने-बयाँ[5] क्या था॥

कभी बिजली, कभी गुलची, कभी सैयादकी नज़रें।
गुजरगाहे-हवादस[6] था, हमारा आशियाँ क्या था॥
चला हूँ सैकड़ो आलाम[7] लेकर दारे-फ़ानीसे[8]।
बजुज़ नाकामियोंके[9] और ऐ 'शौकत' यहाँ क्या था॥

जान दे देंगे हम ऐ हिम्मते-दुश्वारपसन्द!
मरज़े-इश्क अगर काबिले-दरमाँ[10] निकला॥
एक हालतमें बसर उम्र न हो सकती थी।
ऐश भी दर्दका शर्मिन्दये-अहसाँ निकला॥

---

[1]तृष्णा; [2]देखनेका अभिलाषी; [3]बहती हुई जीवन नौका; [4]असरका, [5]कहनेका सुरुचिपूर्ण ढग; [6]बलाओंका मार्ग, [7]मुसीबते; [8]असार ससारसे; [9]असफलताओंके अतिरिक्त; [10]इलाजके योग्य।

मौत बरहक़ थी मगर काश न आती शबे-ग़म।
यह तो कहनेको न होता कि इक अरमाँ निकला॥

रंज क़िस्मतसे मेरी राहतमें शामिल हो गया।
इनक़लाबोंकी हवासे दर्द ही दिल हो गया॥
दर्द क्या जाता दमे-आख़िर तसल्लीसे मगर।
ज़िन्दगानीमें सकूने-मौत[1] शामिल हो गया॥

वोह और उनसे तजदीदे-अहले-तमन्ना[2]।
कोई फिर तबाहीका सामान होगा॥
जहाँतक तुम्हारी इनायत बढ़ेगी।
वहींतक तबाहीका इमकान[3] होगा॥

यह सच है एक हालतपर कभी दुनिया नहीं रहती।
क़फ़सको आज हम तरजीह देते हैं गुलिस्ताँपर॥
अदमका ख़्वाब[4], मदफ़नका सकूँ[5], दुनियाकी बेदारी।
ख़ुदा मालूम कितनी हालतें गुज़री हैं इन्साँपर॥
न बनवाता यहाँ कोई मेरी तुरबत तो अच्छा था।
यह धब्बा रह गया 'शौकत'! ज़मीने-कूए-जानाँपर[6]॥

इन सजदारेज़ियोंका वोह दौर आ रहा है।
जब बन्दगी करेगी सजदे मेरी जबींपर[7]॥
अंजाम-बीनियोंने ज़ाहिदको खोके छोड़ा।
बरबाद कर दी दुनिया सारी उमीदे-दींपर॥

---

[1]मौतका चैन, [2]इच्छाओंकी पूर्ति, [3]सम्भावना, [4]परलोकका स्वप्न; [5]क़ब्रकी शान्ति, [6]प्रेयसीकी गलीमें, [7]मस्तकपर।

वोह आफताबे-तावाँ[1] दुनिया है जिससे रोशन।
इक दागेमासियत[2] है इफलाककी[3] जबीपर[4]॥
मतलब परस्त दुनिया बदजन[5] बना गई है।
रहजनका[6] अब गुमाँ[7] है हर अपने हमनशीपर[8]॥

कर दिया तूने बेनियाजे-विसाल[9]।
ऐ गमे-हिज्र! तेरी उम्र-दराज[10]॥
मेरी किस्मतके पेचो-खम निकले।
मेरे रौंदे हुए नशेबो-फराज[11]॥
खो न दे मुझको दैरो-हरम।
तू कहाँ है कहीसे दे आवाज॥

तासीर ही बयाँमें न हो जब तो क्या करे?
क्या अपना हाल उनको सुनाता नही हूँ मैं॥
इतना खयाले-दोस्तने बेखुद बना दिया।
पहरो अब अपने होशमें आता नही हूँ मैं॥
क्या हँस रहे है मेरी हँसीपर सब ऐ जुनूँ!
क्या काबिले-मसर्रते-दुनिया[12] नही हूँ मैं॥
मायूस हो चले हैं मलामतगराने-इश्क[13]।
वोह वक्त है कि बात समझता नही हूँ मैं॥

खो दिया है जब्ते-गमने, आशिकीका एतबार।
आजतक वोह यह समझते है कि अरमाँ कुछ नही॥

---

[1]प्रकाशमान सूर्य्य, [2]पापोका धब्बा, पाप-चिह्न, [3]आकाशकी, [4]मस्तकपर, [5]अविश्वासी, [6]लुटेरेका, [7]शक, [8]साथीपर, [9]मिलनसे उदासीन, [10]लम्बी आयु हो, [11]उत्थान-पतन, [12]ससार सुखके योग्य; [13]प्रेमकी बुराई करनेवाले।

गुलिस्ताने-हयाते-चन्दरोज़ाका[1] न सुन क़िस्सा ।
बहार आई थी बरसोंमें ख़िज़ाँ आई घड़ीभरमें ॥

हरगिज़ फ़रेबे-रंगे-मसर्रत[2] न खाइये ।
यह ग़मका नाम है, यह हक़ीक़ी ख़ुशी नहीं ॥

भुला दिया है ख़ुदीने मेरी मुझे 'शौकत' !
इसी सबबसे ख़ुदीको भुला रहा हूँ मैं ॥

मैं तेरा बन्दा हूँ लेकिन बन्दगीसे बे-नियाज़[3] ।
तू ख़ुदा है और ख़ुदा होकर भी तू गाफ़िल नहीं ॥

यह इक तुम हो कि हमको नंगे-महफ़िल कहते जाते हो ।
और इक हम हैं कि तुमको ज़ीनते-महफ़िल समझते हैं ॥

यह हस्ती-ओ-अदम[4] क्यों हो ? फ़ना[5] क्यों हो, बक़ा[6] क्यों हो ?
तुम्हीं-तुम हो तो फिर दिलमें ख़याले-मासिवा[7] क्यों हो ॥

या तूले-रहे-ग़ममें[8] तख़फ़ीफ़[9] नुमायाँ[10] कर ।
या मुझको सम्भाले रह ऐ हिम्मते-मरदाना !

जनाबे शेख़ ! अच्छा आप जाते हैं ख़ुदा हाफ़िज़ ।
मेरा ईमाँ भी लेते जाइयेगा ताक़े-निसयाँसे[11] ॥

जब वस्लो-जुदाईमें तमीज़ नहीं रहती ।
तब जाके कहीं तेरा जलवा नज़र आता है ॥

---

[1]क्षणिक जीवनरूपी उद्यानका, [2]ख़ुशीका फरेब, [3]बेपरवाह; [4]जीवन-परलोक, [5]मृत्यु, [6]जिन्दगी, [7]तुम्हारे अतिरिक्त; [8]ग़मोंकी लम्बी राहमें; [9-10]कमीकर, [11]जिसे आलेमें रखकर भूल गया था ।

आस्माँके ज़ुल्म, उनके जौर, बल तकदीरके।
आजपर क्या मुनहसिर है उम्रभर देखा किये॥

सब्रकी हिम्मत बड़ी है मुश्किलाते-ज़ीस्तसे[1]।
मौतको भी जिन्दगी कहकर गवारा कीजिये॥
देखना उनका जो नामुमकिन हो 'शौकत'! उम्रभर।
आप उनके देखनेवालोको देखा कीजिये॥

इतना नही अल्लाहका बन्दा कोई 'शौकत'!
मसजिदमें जो एक छोटा-सा मयख़ाना बना दें॥

मैं बेकरार हूँ, इससे मुझे करार तो है।
वह खुद नहीं है, मगर उनका इन्तजार तो है॥
खुदी[2] बुरी है खुदाका मगर विकार[3] तो है।
नहीं बुलन्दिये-मेम्बर[4] उरूजे-दार[5] तो है॥

गरीके-वहरे-फना हूँ मगर करार तो है।
सफीना दामने-साहिलसे हमकनार तो है॥

परवाये-कुफ्र है न गमे-बन्दगी मुझे।
अब मैं कहाँ हूँ कुछ तो बता बेखुदी मुझे॥
ऐ बेख़ुदी-ए-शौक ! कहाँ ले चली मुझे?
अब मैं कहाँ हूँ कुछ तो बता बेख़ुदी मुझे॥

ऐ बेखुदी-ए-शौक ! कहाँ ले चली मुझे?
अब ढूँढती फिरेगी मेरी बन्दगी मुझे॥

---

[1]जीवनकी कठिनाइयोसे, [2]अहमन्यता; [3]गौरव; [4]मसजिदके मचपर न सही, [5]सूलीकी ऊँचाईपर तो है।

अव्वल तो वहम है मेरा दुनिया ही कुछ नही।
और है अगर तो व्ह नहीं पहचानती मुझे॥

हिस्सेमें मेरे कूचये-जानाँकी जमी है।
बिस्तर भी यही था, मेरी तुरवत भी यहीं है॥

क्यो अपनी तरफ बर्कको ख़ुद ही न बुलाऊँ?
जब मुझको नशेमनकी[1] तबाहीका यकी है॥

हाँ मेरा हाल मुझसे बयाँ कर दे चारागर[2]!
बाकी नही है ख़ुद ही उमीदे-शफा[3] मुझे॥

रूह भी फूँकें तने बेजाँमे हम तो कुछ नही।
तुम किसीको मार भी डालो तो वोह एजाज़ है॥

जिनकी ख्वाहिश है कि मै हुश्यार हो जाऊँ ज़रा।
काश वोह भी दो घड़ी बेहोश होकर देखते॥

हमें दैरो-हरममें कैद रक्खा बदनसीबीने।
जहाँ सजदेकी गुंजाइश न थी सजदा वहाँ करते॥

बुतकदा उजड़ा था शौकत! सिर्फ काबेके लिए।
बुतकदा काबेमें अब तैयार करना चाहिए॥

जिसने तुम्हे हसीन बनाकर दिखा दिया।
हम उस नज़रका हुस्ने-नज़र देखते रहे[4]॥

२० जनवरी १९५३ ई०]

---

[1]घोसलेकी; [2]चिकित्सक; [3]आराम होनेकी आशा, [4]शौकत थानवी साहबकी 'गुहरस्तान'मे ६२० अशआर है, जिनमेंसे उक्त ६० शेर चुनकर दिये गये हैं।

'वहज़ाद' लखनवी



हमे खेद है कि हम 'वहजाद' लखनवी साहबका परिचय नही दे पाये हैं और इस लाचारीका कारण यही है कि आपका परिचय न तो आपकी पुस्तकमे मिला और न हमारे पास आनेवाले पत्र-पत्रिकाओमे। आप अर्सेसे दिल्ली रहते है। १५-२० वर्ष पूर्व हमने कई मुशायरोमे आपको सुना है। तरन्नुमसे गजल पढते हैं, और अच्छा कहते हैं। जोशे-जुनूंका यह आलम होता है कि आप कमीज नही पहन सकते। पहना देनेपर फाड़ डालते हैं, और गलेमे सूतकी एक ढीली सुतली पडी रहती है। जिसे आप कमीजका गरेवान तसव्वुर करके दोनो हाथोसे फाडते रहनेका प्रयत्न करते रहते हैं। साथ ही गजल भी आकर्षक ढगसे पढते रहते है। आपको देखकर यकीन हो जाता है कि कभी मजनूं भी इसी तरह कुरतेका गरेबान फाडा करता होगा।

हजरते वहजादकी 'चरागेतूर' चौथी कृति हमारे सामने है। यह साकी बुकडिपो देहलीसे प्रकाशित हुई है। नातिया गज़ले, नज्म और गीतोके अतिरिक्त १३०के करीव गज़ले है, उन्हीमेसे चन्द [illegible] रहे हैं।

ग़मको मसर्रतोंकी तरहसे है आरज़ी ।
मायूसे-ग़मको लज़्ज़ते-कामिल न मिल सकी ॥

भला और क्या होगी मैराजे-उल्फ़त ?
तेरी हर जफ़ाको वफ़ा कह रहा हूँ ॥

उफ जुस्तजूमें भी न गई अपनी बेख़ुदी ।
'बहज़ाद' हम चले तो पसे-कारवाँ रहे ॥

हमें याद है जवानी बरायेनाम अपनी ।
बस इस तरहसे कभी जैसे ख़्वाब देख लिया ॥

समझमें कुछ नहीं आता है नासेह !
कि तू बेकार क्यों समझा रहा है ॥

यह जब्ते-ग़म भी कोई बड़ी शै है ? चश्मे-नाज़ !
वोह काम दे कि जो यह दो आलम न कर सके ॥
ज़ाहिद शिकस्ते-तौबाका इतना-सा राज़ है ।
साक़ीकी चश्मे-नाज़को बरहम न कर सके ॥

वोह गये दिन जब तड़पता था मैं उनकी यादमें ।
यादमें अब तो ख़ुद अपनी उनको तड़पाता हूँ मैं ॥
मुझको क्या मालूम यह पानी है या है ख़ूने-दिल ।
मैं तो इतना जानता हूँ अश्क बरसाता हूँ मैं ॥
मेरे हर अरमानका मिटना मुबारक है मुझे ।
यह भी क्या कम है कि कुछ खोकर सकूँ पाता हूँ मैं ॥

दीवाना करके आपको क्या लुत्फ़ आयेगा ?
जो चीज़ बन सकूँ वोह बनाकर तो देखिये ॥

ख़ुदाको कसम बस हमी जानते हैं।
मुहब्बतकी दुनियामें क्योंकर रहे हैं॥

मैं उनकी हक़ीक़तको पहचानता हूँ।
मैं रस्मे-मुहब्बत बढ़ाकर करूँ क्या?

गिरा देंगे नज़रोंसे अपनी वोह मुझको।
निगाहोंमें उनकी समाकर करूँ क्या?

पड़ी निगाह तुझीपर तमाम महफ़िलमें।
निगाहे-हुस्न! मेरा इन्तख़्वाब देख लिया॥

कहता है इसको इक जहाँ इश्ककी कामयाबियाँ।
रंजो-अलमकी ज़िन्दगी, हँसके गुज़ारता हूँ मैं॥

आमदे-यारपर तो हम होशो-हवास खो चुके।
देखिये अपना हाल हो वक़्ते-विदाये-यार क्या?
मुझको तबाह करके भी चैन नहीं तुझे ज़रा?
मेरा ही घर पसंद है गर्दिशे-रोज़गार क्या?

दिलको जितना है इज़्तराब मेरे।
उतना रुख़से सकूँ टपकता है॥

इश्क है हुस्नसे बहुत बरतर।
ख़ुदको उनसे बुलन्द रखता हूँ॥

मुझे आपने कर लिया है जो अपना।
मुझे देखिये कितना मग़रूर हूँ मैं॥

वह ख़ुद मुसकराते चले आ रहे हैं।
मेरे ग़मकी ख़ुद्दारियाँ रंग लाईं॥

बहुत रोज मैं रह चुका उनका बन्दा।
हसीनोंको अब अपना बन्दा करूँगा॥

कहते हैं शायद इसको मजबूरिये-मुहब्बत।
ग़ममें भी हमने जबरन, पैदा किया तबस्सुम॥

मुझको तो खुद तबाहियाँ अपनी अजीज हैं।
बिजली तड़प रही है यह क्यों आशियाँसे दूर॥
मुझको नहीं पसन्द यह ज़ूद अख़्तयारियाँ।
ऐ रहनुमाँ! बता कि है मंजिल कहाँसे दूर॥

क्या यूँ ही उजाड़ेगा तू यह मेरा कफस भी?
इसको भी नशेमन जो मैं सैयाद बना लूँ॥

तेरी भी कद्र है, तेरे दिलकी भी कद्र है।
दो लफ़्ज़ कहके आपने बहला दिया मुझे॥

ज़ात मेरी है दो आलमसे बुलन्द।
और मुझसे बढके उनकी ज़ात है॥

उसकी रफअ़त, उसकी वकअत, उसकी कीमत कुछ न पूछ।
हाय वह इक खूनका कतरा जो कहलाता है दिल॥

हर चन्द गवारा न था ख़ुद्दारिये दिलको।
कहना पड़ा मजबूर शबे-ग़मका फसाना॥

क्या जाने अदा कौन-सी समझे है वोह इसको?
आ जाना युँ ही और बुलायेसे न आना॥

नाकामियोंके ख़ौफने दीवाना कर दिया।
मंजिलके सामने भी पहुँचके हिरास हैं॥

१६ अगस्त १९५३ ई०]

अख़्तर अन्सारी

[१९०९——ई०]

अख़्तर अन्सारी १९०९ ई०मे दिल्लीमे जन्मे। यही उनका वतन है। १९३० ई०मे देहलीसे बी० ए० किया। १९३१मे इंगलिस्तान गये, परन्तु वहाँसे शीघ्र वापिस चले आये। १९३४ ई०मे बी० टी० किया और मुस्लिम यूनिवर्सिटी स्कूलमे अंग्रेजी शिक्षक है।

आप १९२८से शेर कह रहे है। आपने पहले नज्मे कही। १९३६से उपन्यास लिखने शुरू किये। आपके दो उपन्यास और तीन कविता-संग्रह, १आबगीने, २ख़ूनाब, ३ 'खन्दयेसहर' छप चुके है।

अख़्तर अन्सारीका मकतबे-उर्दू लाहौर द्वारा १९४३ ई०मे प्रकाशित 'ख़ूनाब' हमारे सामने है। इसमे आपकी ९२ गजले और ५० फुटकर अशआर संकलित है। चन्द अशआर मुलाहिजा हो—

क्या याद करके इशरते-रफ़्ताको[1] रोइये।
इक लहर थी कि नाचती-गाती निकल गई॥

तारोको देखना और हर लहजा आहे भरना।
कटती है मेरी रातें यूँ हौजके किनारे॥

अब कोई दममें गर्क हुआ चाहता हूँ मैं।
जो मौजे-आबपर हो रवाँ[2], वोह दिया हूँ मैं॥
मैंने भी इक बनाई है दुनिया यहाँसे दूर।
ऐसा भी इक जहान है जिसका खुदा हूँ मैं॥

---

[1]बीते हुए सुखके दिनोको, [2]पानीकी लहरोपर रखा हुआ।

यह शायरी नहीं है, तमन्नाकी क़ब्रपर—
तामीर एक ताजमहल कर रहा हूँ मैं ॥
जो जिन्दगी थी अस्लमें 'अख्तर' वोह कट गई।
जीनेकी शर्म रखनेको अब जी रहा हूँ मैं ॥

मैं हँसता हूँ मगर ऐ दोस्त! अक्सर हँसनेवाले भी—
छुपाये होते हैं दाग़ और नासूर अपने सीनोंमें ॥
मैं उनमें हूँ जो होकर आस्ताने-दोस्तसे महरूम।
लिये फिरते हैं सजदोंकी तड़प अपनी जबानोंमें ॥

जिन्दगीभरकी अज़ीयत[1] है यह जीना या रब!
एक-दो दिनकी मुसीबत हो तो कोई सह ले ॥

यूँ तो जिये सारी उम्र लेकिन—
जीनेकी तरह न जी सके हम ॥

हसीन चाँदोंकी शमएँ मुझे जलाने दो।
मज़ार हैं मेरे सीनेमें आरज़ूओंके ॥

अगर अश्कों-से भी कोई न समझे मुद्दआ इनका।
तो इससे आगे हैं मजबूर मेरी बेज़बाँ आँखें ॥

वोह कैफ़ियत अरे तौबा कि वहशियोंकी तरह।
दिले-सितमज़दा सीनेमें सर पटकता था ॥

शबाब नाम है उस जाँनवाज़ लमहेका।
जब आदमीको यह महसूस हो "जवाँ हूँ मैं" ॥

---

[1]तकलीफ़।

पस्त कहता नही मैं पस्तीको।
अपनी फितरत बुलन्द रखता हूँ॥
चश्मे-बातिनसे देखता हूँ मैं।
चश्मे-जाहिरको बन्द रखता हूँ॥
कामयाबी मुहाल है 'अख़्तर'!
जौक़[1] इतना बुलन्द रखता हूँ॥

आलम यह है शबाबमें जोशे-शबाबका।
गोया छलक उठा है पियाला शराबका॥
अल्लाह, यह शगुफ़्तगीये-हुस्नकी[2] बहार।
गोया चमनमें फूल खिला है गुलाबका॥

रश्क[3] करते हैं जो 'अख़्तर'पै वोह क्या जानें आह!
रोजो-शब अपने वोह किस तरह बसर करता है॥

साफ जाहिर है निगाहोसे कि हम मरते हैं।
मुँहसे कहते हुए यह बात मगर डरते हैं॥
आस्माँसे न कभी देखी गई अपनी खुशी।
अब यह हालत है कि हम हँसते हुए डरते हैं॥

'अख़्तर' मजाके-दर्दका मारा हुआ हूँ मैं।
खाते है अहले-दर्द मेरे नामकी कसम॥

समझता हूँ मैं सब कुछ सिर्फ समझाना नही आता।
तड़पता हूँ मगर औरोंको तड़पाना नहीं आता॥

---

[1]सुरुचि; [2]सौन्दर्यके खिलनेकी; [3]ईर्ष्या।

लबरेज होके दिलका सागर छलक उठा है।
शायद इसी सबबसे बहती हैं मेरी आँखें ॥

जहाँके गुलकदेसे[1] ऐ कजा मुझे ले चल।
मेरा वजूद यहाँ ख़ार-सा[2] खटकता है ॥

मैं वोह महरूमे-शादमानी[3] हूँ।
जिसे बरसो हँसी नहीं आती ॥

मजाके-आरजूकी आफतें दिन-रात सहता हूँ।
मुझे 'अख़्तर' तअाज्जुब है मैं जिन्दा कैसे रहता हूँ ॥

मुब्तलाये-दर्द होनेकी यह लज्जत] देखिये।
किस्सये-गम हो किसीका दिल मेरा धक-धक करे ॥

बुझा सकोगे तुम 'अख़्तर' न आँसुओसे इसे।
यह कोई आग नहीं जज्बये-मुहब्बत है ॥

मुझे खुद भी खबर नहीं 'अख़्तर'!
जी रहा हूँ कि मर रहा हूँ मैं ॥

क्या इससे बहस कैसे थे जो दिन गुजर गये।
अच्छे थे या बुरे हमें बरबाद कर गये ॥
'अख़्तर' यह गमके दिन भी गुजर जायेंगे यूँ ही।
जैसे वह राहतोके जमाने गुजर गये ॥

गमसे नालाँ हूँ, ऐशसे बेजार।
हाय क्या हो गया तबीयतको ॥

---

[1]चमनसे; [2]काँटे-सा; [3]खुशीसे रहित।

जिसमें धड़का लगा रहे ग़मका।
क्या करूँ लेके ऐसी राहतको॥

मुहब्बत है, अज़ीयत है, हुजूमे-यासो-हसरत है।
जवानी और इतनी दुःखभरी कैसी क़यामत है॥

मेरे धड़कते हुए दिलपै हाथ रख दे कोई।
कि आज थोड़ी-सी तस्कीन चाहता हूँ मैं॥

बेख़ुदीकी शराब पीता हूँ।
ग़फ़लतोंके सहारे जीता हूँ॥
वोह मसर्रतके चन्द लमहे आह।
याद करके उन्हींको जीता हूँ॥
शायद एक दिन उम्मीद बरआये।
हाय किस आसरेपै जीता हूँ॥

अपने एक-एक साँसमें मैंने।
उम्रभरका अज़ाब देखा है॥
ज़िन्दगीकी हरेक करवटमें।
इक नया इन्क़लाब देखा है॥

किसीके हुस्ने-सीमीका यह शायद इक भिखारी है।
ज़मीपर चाँदने फैला दिया है अपने दामाँको॥

ग़मके सदमे उठाये हैं बरसों।
जब मसर्रतकी क़द्र जानी है॥

मेरे इरादे निहायत बुलन्द थे यानी—
कभी मैं अपने इरादोंमें कामयाब न था॥

ज़ुहद[1] भी अस्लमें है ख़ुदग़रज़ी।
मैं करूँ यह गुनाह नामुमकिन॥

उजड़े दिलमें उमीदका आलम।
जैसे सहरामें[2] जल रहा हो दिया॥
नौजवानी थी ज़िन्दगी दरअस्ल।
यूँ मैं जानको सारी उम्र जिया॥

मुहब्बतकी सोरिशसे[3] ख़ाली है सीना।
यह जीना भी है कोई जीनेमें जीना॥
उमंग अपने दिलमें है जैसे चमनमें।
खड़ी मुसकराती हो कोई हसीना॥
यह शबनम है 'अख़्तर' कि फ़र्ते-हयासे —
झलकता है गुलकी जबींपर पसीना॥

शबेतार! तेरी ख़मोशीके कुर्बां, बता आमद-आमद है किस रश्के-महकी?
यह बज़्मे-फ़लक क्यों सजाई गई है, यह तारोंका छिड़काव क्यों हो रहा है?

ज़िन्दगी इक हसीन धोका है।
हमने सोचा है हमने समझा है॥
कौन समझेगा मेरे दर्दको आह!
रूहका ज़ख़्म किसने देखा है॥
है सब[illegible] यानी—
ज़िन्दगी[illegible] है।

---

[1]दिखावटी उपासना, [illegible] [2]चहल-पह[illegible]
कभी देखा नहीं ग[illegible]

आह, मुतरिब[1]! यह तेरा धीमे सुरोंमें गाना।
जैसे दरिया शबे-महताबमें आहिस्ता बहे॥

क्या बताऊँ मैं क्या है मनकी आग।
तुमने देखी तो होगी बनकी आग॥
आबे-कुलजम जिसे बुझा न सके।
वोह है आजादिये-वतनकी आग॥

जिसकी वीरानियाँ हैं रश्के-बहार।
मैं वोह उजड़ा हुआ गुलिस्ताँ हूँ॥

हमको जिसका गम है, उसको कुछ हमारा गम नहीं।
यह मुसीबत उम्रभर रोनेको भी कुछ कम नहीं॥

मेरे दिले-मायूसमें क्योंकर न हो उम्मीद।
मुरझाये हुए फूलमें क्या बू नहीं होती॥

जो सच पूछो तो दुनियामें फकत रोना ही रोना है।
जिसे हम जिन्दगी कहते हैं काँटोंका बिछौना है॥

मौसमे-गुलमें सितम हाय खिजाँ याद न कर।
चन्द घड़ियाँ हैं खुशीकी इन्हें बरबाद न कर॥

जिसने गमोंकी गोदमें पाई हो परवरिश।
वह गमफरोश शेर न लिक्खे तो क्या करे॥

यह दर्दमन्द दिल भी, है इक रुबाब लेकिन —
नग्मोंके बदले इसमें आहे भरी हुई हैं॥

---

[1] गानेवाली।

कामयाबीके देखता हूँ ख़्वाब।
मेरे मालिक ! मुझे हुआ क्या है ॥

मै हँसता हूँ दिनभर, मै रोता हूँ शबभर ;
ख़ुदा जाने मुझको यह क्या हो गया है ॥

यह भी मुमकिन नही कि मर जायें।
ज़िन्दगी आह कितनी ज़ालिम है ॥

तारोंभरा यह आस्माँ, है फकत आस्मान या—
दुःखभरी कायनातका सीनये-दाग़दार है ॥

२० सितम्बर १९५२ ई०]


महजूर (विरही)



'शफ़ीक़'
जौनपुरी

तुझे हम दोपहरकी धूपमें ऐ फूल देखेंगे।
अभी शबनमके रोनेपर हँसी मालूम होती है॥

जो हम, ऐ हमसफीरो! महवे-ऐशे-गुलिस्ताँ होंगे।
यह तिनके आशियानेके क़फसकी तीलियाँ होंगे॥

तंग आ चुके हैं अहले-रियाकी अज़ाँसे हम।
दुनियाको अब जगायेंगे दिलकी फ़ुग़ाँसे हम॥

शाहराहे-आमसे पाबन्द होता है कदम।
उस तरफसे चल जिधरसे रास्ता जाता नहीं॥

चाँद-तारे गुंच-ओ-गुल सब यहीं होंगे मगर।
फिर भी करवट लेके दुनिया क्यासे क्या हो जायगी!

इक ऐसी आहकर बुलबुल! चमनमें आग लग जाये।
अभी फ़रियाद सुनकर फूल हँस देते हैं गुलशनमें॥

ऐ दौरे चर्ख़ तेरी पाबन्दियाँ कहाँ तक।
हम ख़ुद बना रहे हैं अपने लिए ज़माना ॥

अब उस चमनमें बनायेंगे आशियाँ अपना।
कि आस्मान जहाँ बिजलियाँ गिरा न सके ॥

न बदलें 'शफ़ीक़' आके हिन्दोस्ताँमें।
वही है हिजाज़ी घराना हमारा ॥

—सफ़ीना

ख़ुदाया कुछ न दे फिर भी यह सौ देनेका देना है।
अगर इन्सानके पहलूमें तू इन्सानका दिल दे ॥
वोह क़ुव्वत दे कि टक्कर लूँ हर इक गरदाबे-दरियासे।
जब उलझाना है मौजोंमें तो कश्ती दे न साहिल दे ॥

जुनूँपे ओ मुसकरानेवाले! बिना उमीदोंकी ढानेवाले!
वफ़ाके तेवर बदल न जायें, कि हुस्नका अहतराम कबतक?

—निगार अगस्त १९४६ ई०

तहज़ीबका आईना अबतक शरमिन्द-ए-अहसाँ हो न सका
क्यों शोरे तरक़्क़ी है या रब! इन्साँ ही जब इन्साँ हो न सका ॥

—शायर सालनामा १९५१ ई०

१४ अगस्त १९५३ ई०]

अर्शी भोपाली

वह हमसे खफा तो है लेकिन, आया न खफा होना भी उन्हें ।
अहबाबने उनकी नज़रोंको, सौबार परीशाँ देखा है ।।
अब कहिये तो उनसे क्या कहिये, कुछ याद नही सब भूल गये ।
दामन तो यह कहकर थामा था "कुछ आपसे हमको कहना है" ।।
तजदीदे-करम सर आँखोंपर, यह दौलतेगम तो मुझसे न ले ।
कुछ और सँवरना है मुझको, कुछ और भी मुझको जीना है ।।

तजदीदे-आरज़ूके लिए दिल मचल न जाय ।
मुद्दतके बाद फिर वोह नज़र आ गये है आज ।।
शायद उन्हे भी रंजिशे-बाहम है नागवार ।
मुझसे निगाह मिलते ही घबरा गये है आज ।।
अब देखिये पहुँचती है बरबादियाँ कहाँ ?
उनकी हसीन आँखोंमें अश्क आ गये है आज ।।

जब कभी दर्दे-मुहब्बतमें कमी पाई है ।
अपनी हालतपै मुझे आप हँसी आई है ।।
आपके अहदे-करमका भी तसव्वुर है गराँ ।
उन मुकामातपै अब आपका सौदाई है ।।

बरहमीका दौर भी किस दरजा नाजुक दौर है ।
उनकी बज़्मेनाज़तक-जा-जाके लौट आता हूँ मैं ।।

हयाते-ख़ुल्द भी 'अर्शी' कहाँ जवाब उनका ।
जो उनकी बज़्ममें घड़ियाँ गुज़ार दीं मैंने ।।

बेताबिये-दिलके इन नाज़ुक लमहोंका तसव्वुर तो कीजे ।
जब अहदे-मुहब्बत होते ही फ़ुरक़तका ज़माना आ जाये ।।

तेरी नीची नज़रकी यादका आलम अरे तौबा ।
चुभा कर दिलमें जैसे तोड डाले कोई पैकाँको ।।

थरथराते हुए हाथोसे जाम देता है ।
चारागर आज न जाने मुझे क्या देता है ।।
कुछ तो होता है हसीनोको भी अहसासे-जमाल ।
और कुछ इश्क भी मग़रूर बना देता है ।।
दार मिल ही गई मन्सूरको 'अर्शी' वरना ।
कौन दुनियामें मुहब्बतका सिला देता है ।।

आग़ाज़े-आशिकीका अल्लाहरे ज़माना ।
हर बात वहकी-बहकी हर गाम वालहाना ।।
उनके मेरे मरासम थे वेतकल्लुफाना ।
ऐसा भी आ चुका है, उल्फ़तमें इक ज़माना ।।
सौ बार देखकर भी यूँ मुज़तरब है नज़रें ।
जैसे गुज़र गया हो देखे हुए ज़माना ।।

—निगार जुलाई १९४६ ई०

उनको देखा था अभी, फिर इस तरह वेताव हूँ ।
वाकई देखे हुए जैसे ज़माना हो गया ।।
तानये-अहबाव, दुनियाकी कयास आराइयाँ ।
इक तेरी ख़ातिर मुझे सब कुछ गवारा हो गया ।।
अस्मते-कोनैन उस वरवादे-उल्फ़तपर निसार ।
उनके दामनको वचाकर ख़ुद जो रुसवा हो गया ।।

उनकी महफिलमें भी 'अर्शी' कम नहीं दिलकी तडप ।
यह तबीयतको खुदा जाने मेरी क्या हो गया ॥
—निगार सितम्बर १९४६ ई०

सोजे-उल्फतसे वोह कम मायये-गम है महरूम ।
आतिशे-दिलको जो अश्कोसे बुझा देता है ॥

जब उन्हे अर्जे-अलमपर मुजतरिब पाता हूँ मैं ।
जो न पीनेके है आँसू, वह भी पी जाता हूँ मैं ॥
दिलकी बेताबीके सदके जलवागाहे-नाजमें ।
अब तो अक्सर बेबुलाये भी चला जाता हूँ मैं ॥
बहकी-बहकी-सी निगाहें, लड़खड़ाये-से क़दम ।
हाय ! वोह आलम कि उनके सामने जाता हूँ मैं ॥
उनकी आँखोके तसद्दुक, उनकी आँखोके निसार ।
अब तो 'अर्शी'के लिए अक्सर बहक जाता हूँ मैं ॥

निगाहे-शौकसे कब तक मुकाबिला करते ?
वोह इल्फात न करते तो और क्या करते ?
यह पूछो हुस्नको इलजाम देनेवालोसे ।
जो वोह सितम भी न करता तो आप क्या करते ?
हमें तो अपनी तबाहीकी दाद भी न मिली ।
तेरी नवाजिशे-बेजाका क्या गिला करते ?
—निगार सितम्बर १९४९ ई०

वोह आये सामने लेकिन नजर मिला न सके ।
मेरी निगाहे-तमन्नाकी ताव ला न सके ॥
रहे-वफाकी कठिन मंजिलें अरे तौबा ।
वोह थोडी दूर भी हमराह मेरे आ न सके ॥

ज़माना कहता है बरबादे-आरज़ू मुझको।
ख़ुदा करे कोई इलज़ाम उनपै आ न सके॥
न जाने टूट पड़ी क्या कयामतें दिलपर।
हम आज शिद्दते-ग़ममें भी मुसकरा न सके॥
तेरी हयाते-सकूँ आश्नासे क्या हासिल?
वोह नक्श छोड़, ज़माना जिसे मिटा न सके॥
न कहते थे कि है बेसूद उनसे अर्ज़े-अलम।
जबींपै चन्द सितारे भी झिलमिला न सके॥
तेरी नवाज़िशे-बेहदका शुक्रिया लेकिन—
वोह क्या करे जिसे कुरबत भी रास आ न सके॥
न पूछ उसकी तबाही जो सामने उनके।
छुपाये राज़े-अलम और मुसकरा न सके॥
ग़मे-हयातमें यह सख़्त मरहले तौबा।
कभी-कभी तो मुझे वोह भी याद आ न सके॥
किसी तरह उसे जीनेका हक नहीं हासिल।
जो अपने आँसुओंमें ख़ूने-दिल मिला न सके॥

हमसे और उनसे तर्के-मुलाकात हो गई।
दुनिया जो चाहती थी, वही बात हो गई॥
यह तमकनत, यह ज़ोम, महबे-वजहे-बरहमी।
अब कौन उनसे पूछे कि क्या बात हो गई॥
इज़हारे-ग़मपै और वोह बेगाना हो गये।
क्या बात हमने सोची थी, क्या बात हो गई॥
रोज़े-फ़िराके यारकी अल्लाहरे तीरगी।
यह भी ख़बर नहीं है कि कब रात हो गई॥
'अर्शी' कुछ इस तरहसे हूँ ख़ुश उनको देखकर।
जैसे हर इक सितमकी मकाफ़ात हो गई॥

नैयर अकबराबादी

मरना तो मुकद्दर था, सैयादने उजलत की।
जीते न चमनवाले, जब दौरे-ख़िज़ाँ होता॥

ग़लतफ़हमी न हो जाये किसीको मेरी जानिबसे।
ख़ुदाके वास्ते दीवाना कह दो एक बार अपना॥

वोह एक तुम, तुम्हे फूलोंपै भी न आई नींद।
वोह एक मैं, मुझे काँटोंपै इज़्तराब न था॥

फ़स्लेगुल याद ख़िज़ाँमें मुझे यूँ आती है।
जब कोई ख़ार चुभा, मैंने कहा—"हाय बहार"!

चमनको कौन यूँ बरबाद होते देख सकता है।
ठहर इतना कि बन्द आँखें हम ऐ दौरेख़िज़ाँ! करलें॥

मायूसियाँ पहुँच गईं हद्दे-कमाल तक।
जब ख़ाक हम हुए तो उधरकी हवा नहीं॥

इसी दुनियाकी अक्सर तल्ख़ियोंने मुझको समझाया।
कि हिम्मत हो तो फिर है जहर भी एक चीज खानेकी॥

उम्मीदो-बीममें 'नैयर' अभी इक जंग बरपा है।
मेरी कश्ती पलट आती है, टक्कर खाके साहिलसे॥

वह भी सच्चे, ख़्वाबमें आनेका वादा भी दुरुस्त।
शक मगर हमको शबे-ग़म नींदके आनेमें है॥

आओ ज़रा सकूनकी दुनिया भी देख लो ।
तुमको शिकायतें थीं मेरे इज़्तराबकी ॥

कुछ इसके आनेसे तस्की-सी होती है 'नैयर' !
कहाँसे आती है बादे-सबा ख़ुदा जाने ॥

कुछ ऐसा डूबनेका न होता मुझे मलाल ।
मुश्किल यह आ पड़ी थी कि साहिल नज़रमें था ॥

सहराकी वुस्अ़तोमें भी बहला न मेरा जी ।
अब मैं यह क्या कहूँ कि परेशान घरमें था ॥

बढ़ी है क़ल्बकी धड़कन तुम्हारे वादोंसे ।
उम्मीदवारको पहले यह इज़्तराब न था ॥

उसने यूँ देखा मुझे गोया कि देखा ही नहीं ।
फिर भी मुझतक इक पयामे-नातमाम आही गया ॥

हुदूदे-सईए-तलबसे[1] गुज़र गया हूँ मैं ।
वोह मिल गये हैं मगर, उनको ढूँढता हूँ मैं ॥
पसीना फूलोंको 'नैयर' ! चमनमें आता है ।
निगाह भरके जो काँटोंको देखता हूँ मैं ॥

करूँगा शेबमें[2] अंजामे-इश्क़पर भी नज़र ।
अभी शबाब है, फ़ुरसत मुझे बहुत कम है ॥

जिसे कारवाँ छोड़कर बढ़ गया था ।
वही गर्द अब कारवाँ हो रही है ॥

दिलसे गर्मो-सर्दका अहसास तक जाता रहा ।
ज़िन्दगी यह है तो 'नैयर' मौत किसका नाम है ?

—निगार अप्रैल १९५१ ई०

---

[1]अभिलाषाओंकी सीमासे [2]वृद्धावस्थामें ।

शफक टोंकी

खिज़ाँ अब आयगी तो आयेगी ढलकर बहारोंमें ।
कुछ इस अन्दाज़से नज़्मे-गुलिस्ताँ कर रहा हूँ मैं ।।

बड़ी मुश्किलसे आता है मयस्सर ज़िन्दगी भरमें ।
वोह इक लमहा जिसे इन्साँ गुज़ारे शादमाँ होकर ।।
इन्ही ज़र्रोंसे कल होंगे नये कुछ कारवाँ पैदा ।
जो ज़र्रे आज उडते हैं, गुबारे-कारवाँ होकर ।।

थीं जो कलतक कश्ति-ए-उम्मीदको थामे हुए ।
रुख़ बदल कर आज वोह मौजें भी तूफाँ हो गई ।।

अब इस फ़िक्रमें रातदिन कट रहे हैं ।
तुझे भूल जायें कि खुदको भुला दें ।।

शायर अक्तूबर १९४६ ई०


महजूर (विरही)

शफ़ा गवालियरी

रवा रक्खा यहाँ तक अहतरामे-आशिकी मैंने ।
हँसी आई कभी तो आँसुओंको सौंप दी मैंने ।।

मिली ऐसी भी राहे मुझको अक्सर राहे-उल्फतमें ।
कि खुदको ऐ 'शफा'! घबराके खुद आवाज दी मैंने ।।

सबक ले नजरे-गोरे-गरीबाँ देखनेवाले !
चरागोंको तरसते हैं, चरागाँ देखनेवाले ।।
कफसमें भी तुझे रहना कहीं दूभर न हो जाये ।
अरे मुड़-मुडके ओ सूये-गुलिस्ताँ देखनेवाले !

तू जिसे जर्रा समझकर कर रहा है पायमाल ।
देख उस जर्रेके सीनेमें कहीं दुनिया न हो ।।

शबे-गम रोनेवाला रोते-रोते सो गया शायद ।
जबीने-गुलपै शबनमकी, नमीं देखी नहीं जाती ।।
अरे ओ बेकसीपै रोनेवाले ! कुछ खबर भी है ।
वही है जिन्दगी जो जिन्दगी देखी नही जाती ।।

इक नई बुनियाद डालेंगे तजस्सुसकी 'शफा' !
हर गुबारे-कारवाँमें कारवाँ ढूँढेंगे हम ।।

न होगा पास रहकर इम्तहाँ मश्के-तसव्वुरका ।
वोह जितना दूर हो सकता है, उतना दूर हो जाये ।।

लबोंपै दम है किसीका, कोई सरे-बाली ।
'शफा' ! हयातका दामन पकड़के आई है ।।

धड़कते दिलसे 'शफा' तक रहा हूँ यूँ तारे ।
किसीने जैसे कहा हो कि "आ रहा हूँ मैं" ।।

शमीम जयपुरी

अव्वल तो यह कि नींद न आये तमाम रात।
फिर उसपर उनकी याद सताये तमाम रात॥

साकी-ओ-मुतरिब आये, जाम आये, सुबू आये।
आना था जिनको वोही न आये तमाम रात॥

ऐसे कहाँ नसीब शबे-माहताबमें।
वोह आयें और आके न जायें तमाम रात॥

वोह क्या गये कि नींद भी आँखोसे ले गये।
यानी वोह ख्वाबमें भी न आये तमाम रात॥

जिसन हमारी नींद उड़ाई है इस तरह।
यारब ! उसे भी नींद न आये तमाम रात॥

ऐसे वोह बेख़बर तो न थे मुझसे बज्ममें।
बैठे रहे निगाह झुकाये तमाम रात॥

शहाब

न मिला हमें कुछ गदा होकर।
न दिया तूने कुछ ख़ुदा होकर॥

ऐ बुतो आज़माके देख लिया।
न हुए तुम ख़ुदा, ख़ुदा होकर॥

शहीद बदायूनी

इतना जरूर है कि सकूँ तो न मिल सका।
लेकिन तेरे बग़ैर भी रातें गुजर गईं॥

वोह सम्भले हुए थे, मगर थे फ़सुर्दा।
न आया उन्हे मुझसे दामन बचाना॥

अहसास तो जरूर था लेकिन बहारमें।
हम अहतियाते-जेबो-गरेबाँ न कर सके॥

सुनके कल महफिलमें जिक्रे-हुस्ने-दोस्त।
हम भी कुछ आँसू बहाकर रह गये॥

जलते तो थे चराग मगर रोशनी न थी।
तुम आ गये तो रौनके-काशाना हो गई॥

हँसी आ गई उनकी बेगानगीपर।
वोह गुजरे बराबरसे दामन बचाये॥

हालात इजाजत नहीं देते कि समझ लूँ।
अब जहर मेरे गमकी दवा है कि नहीं है॥

कर लिया हुस्नकी दुनियासे किनारा मैंने।
यूँ भी इक दौर मुहब्बतमें गुजारा मैंने॥

वोह किसीके हैं, मैं किसीका हूँ, मगर एक रब्त है आज तक।
वही अहतयाते-निगाह है, वही अहतयाते-कलाम है॥

किसने लिखा है यह दीवारोंपै जिन्दाँकी 'शहीद'!
"जान देना जिसने सीखा, उसको जीना आ गया"॥

जिनकी बेबाकीके चर्चे हो रहे हैं बज्ममें।
मैंने देखी है उन आँखोंमें हया आई हुई॥

—निगार अप्रेल १९४६ ई०

शान्तिस्वरूप भटनागर

मैं जागता हूँ कि शायद कहीसे आ जाओ।
यहीसे खोई गई थी, यहीसे आ जाओ॥
निगाहें ढूँढ़ती-फिरती हैं गोशे-गोशेमें।
नही ज़मीपै तो अर्शो-बरींसे आ जाओ॥
सुपुर्दे-ख़ाक अगर हो गई तो क्या परवा?
ब-शक्ले लाला-ओ-गुल तुम ज़मींसे आ जाओ॥
सितम है मुझको पता तक नहीं, गई हो कहाँ?
ग़रज़ जहाँ भी हो, लिल्लाह् वहींसे आ जाओ॥
पसन्द हो न अगर शाहे-राहे-आम तुम्हे।
तसव्वुरातमें राहे-यकींसे आ जाओ॥

—आजकल १ जून १९४६ ई०

शातिर हकीमी

जो नज़रकी इल्तजा समझा नहीं।
हाथ उसके सामने फैलायें क्या?

जिन्दगी क्या है मुसलसल इज़्तराब।
इज़्तराबे-दिलसे फिर घबरायें क्या?

बैठना दुश्वार है आरामसे।
आस्ताने-यारसे उठ जायें क्या?

—निगार अप्रेल १९४९ ई०

नसीरुद्दीन शादां

गरूरे-हुस्न न था, शमअ़ बेनियाज़ न थी।
वोह ना-शनासे अदब थे, जले जो परवाने॥

शेरी भोपाली

न जीनेपर ही काबू है न मरनेका ही इमकाँ है।
हकीकतमें इन्हीं मजबूरियोंका नाम इन्सां है॥

गजब है जुस्तजू-ए-दिलका यह अंजाम हो जाये।
कि मंजिल दूर हो और रास्तेमें शाम हो जाये॥
अभी तो दिलमें हल्की-सी खलिश मालूम होती है।
बहुत मुमकिन है कल इसका मुहब्बत नाम हो जाये॥

ख़ताके बाद इनआ़मे-ख़ताका उनसे तालिब हूँ।
किसीने आजतक ऐसी भी गुस्ताख़ी न की होगी॥

शैदा खुरजवी

जिस दौरसे फरिश्ते दामनकशा थे या रब!
उस दौरसे गुजरकर आया हूँ जिन्दगीमें॥
ऐ दोस्त! रफ़्ता-रफ्ता तुझको भी ढूंढ लूंगा।
खोया हूँ मैं अभी तो अपनी ही आगही में॥
किस दर्जा शादमां हूँ, अपनी तबाहियोंपर।
कितना अजीज़ तर है मिटना भी आशिकोंमें॥
जो खिज्रसे न उट्ठे, उम्रे-दराज पाकर।
वोह गम उठाये हमने, दो दिनकी जिन्दगीमें॥

क्या पूछता है 'शैदा' ! मुझसे मेरी तबाही।
अन्धेर है लुटा हूँ, जलवोंकी रोशनीमें ॥
—आजकल १५ दिसम्बर १९४४ ई०

सरूर तोसवी

खयाले-बर्क़ो-मिज़ाजे-शरर बदल डालो।
सकूने-दामॉसे खौफो-खतर बदल डालो ॥
फिरी-फिरी-सी जो अपने ही भाइयोसे रही।
यह मसलहत है कि अब वोह नजर बदल डालो ॥
हवायें जिनसे निकलती हैं जहर आलूदा।
चमनसे अपने वोह बर्गो-शजर बदल डालो ॥
वफा-ओ-महरके काबिल बने हो दुनियामें।
जफा-ओ-जौरकी शामो-सहर बदल डालो ॥

सरशार सद्दीकी

मेरा हाल तूने पूछा यह करम भी कम नहीं है।
तेरी पुरसिशोके सदके, मुझे कोई गम नहीं है ॥

चश्मे-गिरियाँकी कसम मैंने खिज़ाँमें अक्सर।
अपने दामनमें गुलिस्ताँका गुलिस्ताँ देखा ॥

कह दो अभी न करवटें बदले निजामे-दहर।
मेरी जबीने-शौक है, और पाये-यार है ॥

बेखुदी देती है जब दिलको पयामे-खिलवत।
तू खुदा जाने उस आलममें कहाँ होता है ॥
—निगार मार्च १९४८ ई०

सरीर कावरी

लब हिलायें किस तरह अहसासे-दर्दे-दिलसे हम।
साँस लेते हैं तो लेते हैं बड़ी मुश्किलसे हम॥
मशअ़ले-दागे-जिगरसे कल सजाया था जिसे।
लो निकाले जा रहे हैं, आज उसी महफिलसे हम॥

महेन्द्रसिंह सहर

नाउम्मीदी है अब तो वजहे-सकूँ।
फिर कोई महरबाँ न हो जाये॥
ए नशेमनको फूँकनेवाले!
वर्क़ ख़ुद आशियाँ न हो जाये॥

कफ़ससे सुये-आशियाँ देखता हूँ।
कहाँ हूँ इलाही कहाँ देखता हूँ॥

—आजकल १५ अक्टूबर १९४५ ई०

बलवन्तकुमार सागर

ज़मानेकी, न फलककी जफ़ासे डरता हूँ।
मगर गरीबकी इक बद्दुआसे डरता हूँ॥
ख़ुदाकी शान वोह डरता नहीं ख़ुदासे भी।
मगर मैं उस बुते-काफिर अदासे डरता हूँ॥
ख़तर नहीं कोई बेगानोकी जफ़ासे मुझे।
मगर यगानोकी महरो-वफ़ासे डरता हूँ॥

—आजकल उर्दू मार्च १९५३ ई०

साकिब कानपुरी

मैं था जहाने-इश्कमें तेरे वजूदका गवाह।
कुछ न खुला यह राज, क्यों तूने मुझे मिटा दिया॥

तुझपै भी कुछ असर हुआ, उसकी हयाते-इश्कका।
हाय वोह ग़म नसीब जो दर्दपै मुसकरा दिया॥

—शायर जुलाई १९४६ ई०

ज़ुल्म कर लेकिन नजर रख इन्तहाये-ज़ुल्मपर।
आहपर मजबूर हो जाये न पाबन्दे-कफस॥

कौन समझेगा इस लताफतको।
तेरे इन्कारमें भी है इकरार॥
दर्दमें उसके जिन्दगी तो है।
हो मुबारक यह इश्कका इजहार॥
तेरी सूरत तो है सरापा रहम।
हुस्न तेरा है क्यों ग़रीब आजार?

—आजकल १५ जून १९४६ ई०

सबा अकबराबादी

तबस्सुमको मेरे, मेरा गम न समझे।
वोह भोले थे अन्दाज़े-मातम न समझे॥
गलत फ़हमियोंमें जवानी गुज़ारी।
कभी वे न समझे, कभी हम न समझे॥
हमेशा रहे मुतमइन उस अ़तापर।
जियादा न माँगा, कभी कम न समझे॥

महबूबे-माहवशको गलेसे लगाके पी।
थोड़ी-सी पीके उसको पिला, फिर पिलाके पी॥
पाबन्द रोज़े-अब्र शबे-माहका न हो।
पिलवायें जब हसीन, तक़ाज़े हवाके पी॥

दुनियाए बद नज़रकी नज़रसे बचाके पी ।
यानी तअ़य्युनातके परदे गिराके पी ॥
बेकैफ़की शराबका कोई मज़ा नही ।
इसमें ज़रा-सा ख़ूने-तमन्ना मिलाके पी ॥

तेरी महफिलमे मेरा बैठना बेलुत्फ था लेकिन—
ज़रा यह भी तो सुन लूँ मेरे उठ जानेपै क्या गुज़री ?
यह दीवारोंके छींटे खूंके यह जजीरके टुकड़े ।
फिज़ा जिन्द की शाहिद है कि दीवानेपै क्या गुज़री ?
यह अफसाना बरहमनकी निगाहे-याससे सुनिये ।
कि पूजा छोड़ दी मैंने तो बुतख़ानेपै क्या गुज़री ॥


बरहमन (पुजारी)

सालिक

ऐ काश तुम आ जाते अग़ियार ही को लेकर।
कुछ उम्र तो घट जाती गो रंज सिवा होता॥

पहले सितमगरोंके लिए आस्माँ बना।
कुछ बात रह गई थी, जो वोह दिलसिताँ बना॥

मुझसे सितम रसीदाका होगा कोई सरिश्क।
क़तरेका नाम मुफ़्तमें तूफ़ाँ निकल गया॥

कहलाते हो क्यों वादा फ़रामोश जहाँमें।
आ जाओ कि मैं आपमें अक्सर नहीं होता॥

हम बैठे है यूँ मुन्तज़िर उस राहगुज़रमें।
गोया कि उसी शोख़के ठहराये हुए हैं॥

ख़ुदा करे कि समझ जायें यह किनाया वोह।
अभी तो चर्ख़-बरींका गिला किये जाऊँ॥

सच है सेहरामें नौआमोज़े-जुनूँका क्या काम।
ख़ाक उडानी भी न आती हो तो क्या ख़ाक करूँ॥

अगर न वादा करो इन्तज़ार क्योंकर हो?
सकून ख़ातिरे-उमीदवार क्योंकर हो॥

गरचे है आमदे-जानाँकी ख़बर बाज़ारी।
है मगर 'सालिके-'मुज़तरके सुना देनेकी॥

आ गये याद सितम हाय गुज़िश्ता उनको ।
हाय करना ही न था, शिकवये-बेदाद मुझे ।।

दरपै था क़ासिद, नवेदे-वस्ले-यार आनेको थी ।
आज ही क्या मौत ऐ परवर्दिगार ! आनेको थी ।।

उसके आँसू टपक पडे 'सालिक' !
हाल इस दर्दसे कहा तूने ।।

'सालिक' ! ख़ुदाके वास्ते छोडो कुछ और ज़िक्र ।
पूछो ख़बर न कुछ दिले-हसरत मआलकी ।।

जो पास है मेरे, वोह ख़ुदा जाने कहाँ है ?
तुम दूर हो, पर बैठे हो गोया मेरे आगे ।।

ज़बाँ कट जाय गर लबसे तुम्हारा कुछ गिला निकले ।
मगर यह तो कहूँगा तुमको क्या समझा था क्या निकले ?

—निगार सितम्बर १९४९ ई०



सुलेमान अरीब

ऐ सर्वे रवाँ ! ऐ जाने जहाँ ! आहिस्ता गुज़र, आहिस्ता गुज़र !
जी भरके तुझे मैं देख तो लूँ, बस इतना ठहर, बस इतना ठहर ॥

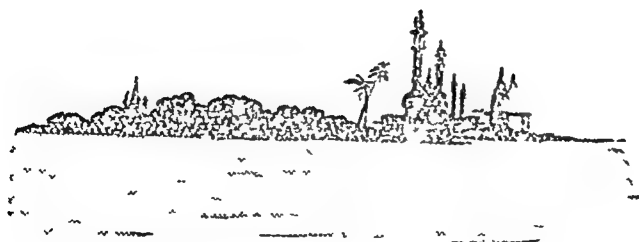
सिराज लखनवी

मैं कबका रौमें इन अश्कोंकी अबतक बह गया होता।
इन आँखोंपर तरस खाकर यह किसने आस्तीं रख दी ?

न आया आह आँसू पूँछना भी गमके मारोंको।
निचोड़ी भी नहीं दामनपै यूँ ही आस्ती रख दी ॥

यहीं उठकर चला आये अगर कावेका जी चाहे।
कि अब तो नक़्शे-पा-ए-यार पर हमने जबीं रख दी ॥

—शायर सालाना नवम्बर १९५१ ई०



हबीबअहमद सद्दीकी एम० ए०

इलाही ! करके तय किन रफअतोको मैं कहाँ पहुँचा ?
कि यकसाँ पड़ रही है अब निगाहे दोस्त-दुश्मनपर ॥

वह सितमगर है, जफाजू है, सितम ईजाद है।
इब्तदाये-रस्मेउल्फत फिर भी की, नाचार की ॥

खूगरे-जौर ही बना देते।
तुमसे तो यह भी उम्रभर न हुआ ॥

अहतरामे-त्रेहिजावीहाए हुस्ने-दोस्त था।
लोग यह समझे कि मूसा तूरपर बेहोश था ॥

यूँ देखता हूँ वर्कको अल्लाहरे बेदिली।
जैसे चमनमें मेरा कहीं आशियाँ नहीं ॥

ऐ दिल ! सरे-नियाजको क्या कैदे-संगे-दर।
काबा ही क्या बुरा है जो यह आस्ताँ नहीं ॥

खयालमें बसा हुआ है, आश्नाके रूपमें।
वोह दिलनवाज अजनबी कि जिसमे गुफ्तगू नहीं ॥

मुझको अहसासे-रंगो-बू न हुआ।
यूँ भी अक्सर बहार आई है ॥

खिजाँ-ना दीदा, गम ना-आश्ना, बेगानये-इसयाँ।
इलाही किस कदर मायूसकुन खुल्देबरीं होगी ?

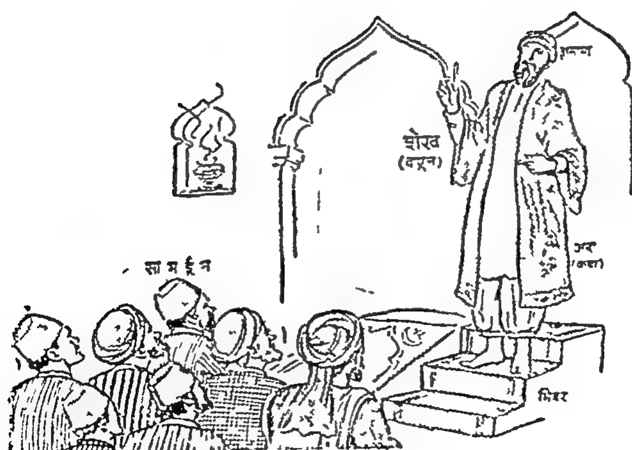
उससे क्या हालते-आशोबे-तमन्ना कहिये।
जिसको अन्दाजये-बेताबिये-तूफाँ ही नहीं॥

क्या मसर्रतका भरोसा ? ऐतबारे-गम नहीं।
दीदये-गिरियाँ भी मुद्दत हो गई पुरनम नहीं॥

सितम है अब भी उम्मीदे-वफापै जीता है।
वोह कम नसीब कि शाइस्तये-वफा भी नहीं॥

तकद्दुस शेखका तसलीम, लेकिन पूछिये इतना।
मुहब्बत भी कभी मिनजुमलये-आदाबे-दीं होगी॥

—निगार सितम्बर १९४८ ई०



हसरत तरमजवी

मुमकिन हो तो इक दिन आ जाओ, या खुद ही बुलाओ तुम हमको।
और यह भी तुम्हारे बसमें न हो, तो याद न आओ तुम हमको॥
ग़म बढ़ते-बढ़ते गम न रहे, इतना तो बढ़ाओ गम दिलका।
रोनेके लिए आँसू न रहे, इतना तो रुलाओ तुम हमको॥

—निगार अगस्त १९४५ ई०

हसरत सुहवाई

वोह पलकोंपै आही गया बनके आंसू।
जबाँ पर न हम ला सके जो फ़साना॥

हुरमतउलइकराम

गमे-दुनियाका नहीं कोई कनारा लेकिन—
फिर भी मुमकिन नहीं दुनियासे कनारा ऐ दोस्त !
मेरी सीरतके खतो-खाल नजर क्या आते ?
मुझको दुनियाने बहुत दूरसे देखा ऐ दोस्त !
दूसरे मुझको न समझे तो कोई बात न थी।
शिकवा यह है कि मुझे तू भी न समझा ऐ दोस्त !
मुझसे हरबार मसर्रतने छुड़ाया दामन।
मुझको सौबार दिया गमने सहारा ऐ दोस्त !

—निगार मार्च १९४७ ई०

मौजोंने खे दिये हैं सफीने हज़ार-हा।
उट्ठा है इस तरह भी तलातुम कभी-कभी॥

औरोंको कम मुझीको तआज्जुब बहुत हुआ।
आया है गर लबोपै तबस्सुम कभी-कभी॥
—शायर जून १९५० ई०

मुकाम ऐसा भी इक आता है राहे-जिन्दगानीमें।
जहाँ मंजिल भी गर्दे-कारवाँ मालूम होती है॥
कभी इक आग ऐसी भी भड़क उठती है सीनेमें।
कि हर कैफीयते-दिलको जलन कहना ही पड़ता है॥
—निगार सितम्बर १९४७ ई०

वोह गम कि जिससे मयस्सर करार होता है।
वोह गम तो रहमते-परवर्दिगार होता है॥
न मुसकराके उठाओ नजर, मिरी जानिब।
कि अब खुशीका तसव्वुर भी बार होता है॥
यह कहके डूब गया, आज सुबहका तारा—
"अजीब चीज ग़मे-इन्तजार होता है"॥

अब्दुलमजीद हैरत

वजअ़दारी लिये जाती है किसीके दर तक।
वरना क्या हाथ बजुज रंजो-मलाल आता है॥
बेनियाजीका किसीकी वोह असर है दिलपर।
अब ब-मुश्किल ही कोई लबपै सवाल आता है॥
असरे-गर्दिशे-तकदीर इलाही तौबा।
ओज आने नहीं पाता कि जवाल आता है॥
जुरअते-अर्जे-तमन्ना तो नही कम लेकिन—
अपनी कोताहिए-किस्मतका ख़याल आता है॥
जैसे खुद हमने यह दरयाफ़्त किया था उनसे।
ख़तमें लिक्खा हुआ अगियारका हाल आता है॥
—आजकल मार्च १९५३ ई०

गंगा-जमुनी शेर

अन्तमे पुराने और नये ढगके चन्द अशआर ऐसे दिये जा रहे है, जिनके रचयिताओके नाम हमे स्मरण नही है—

कारफरमा निगहे-शोख़ है पैमानेमें।
तौबा घबराई हुई फिरती है मैख़ानेमें ॥

दावरके सामने बुते-काफिरको क्या कहूँ।
दोनोंकी शक्ल एक है, किसको ख़ुदा कहूँ ?
मारो भी तुम, जिलाओ भी तुम, तुमको क्या कहूँ ?
तुमको ख़ुदा कहूँ या ख़ुदाको ख़ुदा कहूँ ?

इसी बाइससे दाया तिफ़्लको अफयून देती है।
कि ता-हो जाय लज़्ज़तआश्ना तलख़ीये-दौरांसे ॥

सुनते है हम बहिश्तकी तारीफ सब दुरुस्त।
लेकिन ख़ुदा करे वोह तेरी जलवागाह हो ॥

रहे इक बांकपन भी बेदमागोंमें तो जेबा है।
बढ़ा दो चीने-अबरूपर अदाये-कजकुलाहोको ॥

खिज़ां क्या, फ़स्ले-गुल कहते है किसको कोई मौसम हो।
वही हम है, कफस है, और मातम बालो-परका है ॥

ना तीर कमांमें है, ना सैयाद कहीं है।
गोशेमें कफसके, मुझे आराम बहुत है ॥

नुक्सां नहीं जुनूंमें, बलासे हो घर ख़राब।
दो गज ज़मींके बदले बयाबां बुरा नहीं ॥

ज़बाँ जलाई, किये क़तअ् हाथ पहुँचोसे।
यह बन्दोबस्त हुए हैं मेरी दुआके लिए?

दामन उसका तो भला दूर है ऐ दस्तेजुनूँ!
क्यों है बेकार? गरेबाँ तो मेरा दूर नही॥

मिले जो हश्रमें ले लूँ जबान नासेहकी।
अजीब चीज़ है यह तूले-मुद्दआके लिए॥

मुझे यह डर है, दिलेज़िन्दा! तू न मर जाये।
कि ज़िन्दगानी इबादत है तेरे जीनेसे॥

वह हमी हैं जो तेरा दर्द छुपाकर दिलमें।
काम दुनियाके बदस्तूर किये जाते हैं॥

एक हम हैं कि लिया अपनी ही सूरतको बिगाड़।
एक वोह हैं, जिन्हे तसवीर बना आती है॥

किसको होती है अ़ता इस शानकी बरबादियाँ।
आशियाँ हम क्या बचाते, बिजलियाँ देखा किये॥

अज़ाँ हो रही है पिला जल्द साकी!
इबादत करूँ आज मख़मूर होकर॥

कुछ दिनोसे अब तो राहो-रस्मे-उल्फ़त बन्द है।
वरना बरसों नामाबर आता रहा, जाता रहा॥

वक़्ते-पीरी दोस्तोंकी बेरुख़ीका क्या गिला।
बचके चलता है हरएक गिरती हुई दीवारसे॥

दरियाको अपनी मौजकी तुग़यानियोसे काम।
किश्ती किसीकी पार हो या दरमियाँ रहे॥

आपने जब भी कहा कम्बख़्तो-बदकिस्मत कहा ।
मैं भी आख़िर आदमी हूँ नाम होना चाहिए ॥

न हुस्नसे कोई मतलब न इश्कसे सरोकार ।
कुछ इस तरहकी भी रातें गुज़ार दीं मैंने ॥

मिटा दिया है ज़मानेने इस कदर हमको ।
कि अब हरीफ़ भी अपना नज़र नहीं आता ॥

वाबस्ता तेरी यादमें कुछ तल्ख़ियाँ भी थीं ।
अच्छा किया जो तुझको फ़रामोश कर दिया ॥

इस ख़मोशीमें भी आहे-सर्दसे ।
मैं जो कहना चाहिए था, कह गया ॥

ख़ुदाकी देनका मूसासे पूछिये अहवाल ।
कि आग लेनेको जायें, पयम्बरी मिल जाय ॥

हरम नादीदा, बुतख़ाना गुरेज़ाँ, बरहमन रहबर ।
किसी आवारये-कूए-बुताँकी आज़माइश है ॥

मलिकुलमौत अड़ा था कि मैं जाँ लेके टलूँ ।
और मसीहाको यह ज़िद थी कि मेरी बात रहे ॥

लोग कुछ पूछनेको आये हैं ।
अहले-मैय्यत जनाज़ा ठहरायें ॥

हैरा हूँ दिलको रोऊँ कि पीटूँ जिगरको मैं ।
मक़दूर हो तो साथ रखूँ नौहागरको मैं ॥

रंगीं हैं आजकलके गुले-नौ-बहारसे ।
अगला जो बर्गे-ज़र्द कोई इस चमनमें है ॥

लुत्फे-कलाम क्या जो न हो दिलमें जख्मे-इश्क ।
बिस्मिल नहीं है तू तो तड़पना भी छोड़ दे ।।

वोह हमसे खफा है, हम उनसे खफा हैं ।
मगर बात करनेको जी चाहता है ।।

वस्लमें जिक्रे-उदू भी दम-ब-दम होता रहा ।
शरबते-दीदार मेरे हकमें सम होता रहा ।।

जाहिदो ! दो दिनसे चर्चा हक-परस्तीका हुआ ।
वरना काबेमें सदा जिक्रे-सनम होता रहा ।।

कहो उश्शाकसे अपने कि जब्ते-गिरिया फरमाएँ ।
रुकेगा रास्ता घरका, अगर कूचेमें दल-दल हो ।।

इब्तदा आवारगीकी जोशे-वहशतका सबब ।
हम तो समझे हैं मगर नासेहको समझाएँगे क्या ?

बाद तौबाके भी है दिलमें यह हसरत बाकी ।
देके कसमें कोई एक जाम पिला दे हमको ।।

यह फकत आपकी इनायत है ।
वरना मैं क्या, मेरी हकीकत क्या ।।

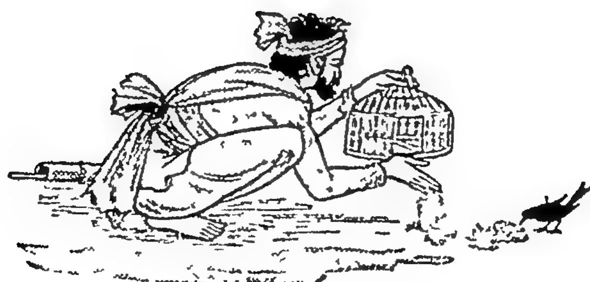
हमनशीं देखी नहूसत दास्ताने-हिज्रकी ।
सोहबतें जमने न पाईं थीं कि बरहम हो गईं ।।।

दश्ते-जुनूंकी सैरमें बहला हुआ था दिल ।
जिन्दामें लाये फिर मुझे अहबाब घेरके ।।

हुक्म है कूचये-जानांसे निकल जानेका।
बेकसी हाथ लगा दे कि मैं बिस्तर बाँधूँ॥

इश्क़ और पासे-वज़अ, फिर उसपर मिरा नसीब।
क्योंकर हुई है उम्र बसर कुछ न पूछिये॥

दे फड़कनेकी इजाज़त सैयाद!
शबे-अव्वल है गिरफ़्तारीकी॥



सैय्याद

शायराएँ

उर्दू-साहित्यको समृद्ध वनानेमे महिलाये भी भरसक प्रयत्न कर रही है। साहित्यका कोई ऐसा अंग नही, जिसपर वे न लिख रही हो। पुराने ज़मानेमे भी अनेक महिलाये फारसी-उर्दूमे गद्य-पद्य लिखती रही है, एव वर्तमान युगमें भी लिख रही है और वहुत अच्छी सफलता प्राप्त कर रही है। हम महिला शायराओका विस्तृत परिचय, कलाम एव विवेचन किसी जुदा पुस्तकमे देगे। नमूनेके तौरपर चन्द शायराओकी गज़लोके चन्द अशआर यहाँ दिये जा रहे है :—

श्रीमती सफ़िया शमीम मलीहाबादी

अगर नग़मये-सरमदी छेड़ दूँ मैं।
ख़िज़ाँमें गुलोंको महकना सिखा दूँ॥

अजल भी मेरे गमपै आँसू बहाये।
अगर नालये-जिन्दगानी सुना दूँ॥

अगर छेड़ दूँ साज ख़िलवतमें तेरी।
चरागोंको ताके-हरमसे गिरा दूँ॥

कहो तो बदल दूँ निज़ामे-दो आलम?
जहन्नुममें फूलोकी जन्नत बसा दूँ॥

गुलिस्ताँका हर फूल दिल वनके महके।
अगर एक अश्के-तमन्ना गिरा दूँ॥

रोक ऐ हमदम ! न मेरी अश्क-अफशानीको तू ।
महफ़िले-हस्तीको है इक शम-ए-महफिलकी तलाश ।।
अब नज़र आये जहाँ अपने सिवा कोई न हो ।
दिलको राहे-शौकमें है ऐसी मंजिलकी तलाश ।।
दीदये-ज़ाहिरसे कब तक देखिये अन्दाजे-दोस्त ।
कीजिये ऐ 'शमअ़' ! अब इक दीदये-दिलकी तलाश ।।

श्रीमती पिन्हाँ

फिर नये अपने ज़मीनो-आसमाँ पैदा करें ।
मावराये-लामकाँ अपना जहाँ पैदा करें ।।
फूँक डालें जो हवादसके ख़सो-ख़ाशाकको ।
आतिशीं आहोसे ऐसी बिजलियाँ पैदा करें ।।
कायनाते-हुस्नमें आ जाये जिससे ज़लज़ला ।
साज़े-दिलसे वोह नवाये-ख़ूँ चुकाँ पैदा करें ।।
खेलते हो इस शकिस्ता साज़के तारोसे क्या ?
दिलके टुकड़े क्या नवाये-दास्ताँ पैदा करें ?
कारगर हो जायगा 'पिन्हाँ' कभी जज़्बे-जुनूँ ।
नाल-ए-शबगीरो-सोज़े-जाविदाँ पैदा करें ।।

श्रीमती कनीज फातिमा काश

तुम्हारी यादसे दिलको सजाके आई हूँ ।
मैं और ख़ानये-उलफत बनाके आई हूँ ।।
तख़ैय्युलातकी वादीमें छुपके आलमसे ।
किसीकी गोदको अकसर सजाके आई हूँ ।।

वोह नशअ्-ख़ेजिये-उलफत वोह जिन्दगीका शबाब।
हसीन होंटोंसे अक्सर पिलाके आई हूँ॥
रुख़ोंपै आज भी इक अर्क़े-सदनदामत है।
गुलोका रंग चमनसे उड़ाके लाई हूँ॥
तू 'काश' मुझसे न पूछे शबाबकी तफसीर।
मेरे हबीब मैं सब कुछ लुटाके आई हूँ॥

श्रीमती सैयदा अख़्तर

किसीकी यादमें आँसू वहा रही हूँ मैं।
हदीसे-दर्दे-मुहब्बत सुना रही हूँ मैं॥
सम्भल जमान-ए-हाज़िर कि तुझसे कुछ पहिले।
क़रीब मंज़िले-मकसूद जा रही हूँ मैं॥
सुनी है जबसे खबर उनकी आमद-आमदकी।
हरीमे-दीदये-दिलको सजा रही हूँ मैं॥
अभी ज़माना नही उनके आज़मानेका।
अभी तो अपनेको खुद आज़मा रही हूँ मैं॥
नफ़स-नफस है मेरा साज़े-गैब ऐ 'अख़्तर'!
जो सुन रही हूँ जहाँको सुना रही हूँ मैं॥

जिसमें सरूरे-दर्दे-गमे आशिकी नहीं।
वोह जिन्दगी, तो मौत है, वोह जिन्दगी नहीं॥
जिसमे बराये-रास्त हो उनसे मुआमला।
वल्लाह! ऐन होश है, वोह बेख़ुदी नहीं॥

हायरी सादगी मुहब्बतकी।
यह नशेओ-फराज क्या जाने ?
चोट सी दिलपै लग गई कैसी ?
निगहे-नीमबाज क्या जाने ?
'नाज'के दिलपै क्या गुजरती है ?
तुझ-सा जालिम यह राज क्या जाने ?

करामत फ़ातिमा बेगम

भरी महफिलमें भी तनहाइयाँ महसूस करती हूँ।
कि दिलमें आजकल वीरानियाँ महसूस करती हूँ ॥
कभी वोह दिन थे हासिल थी, मुझे गममें भी इक लज्जत ।
मसर्रतमें भी अब तो तल्खियाँ महसूस करती हूँ ॥
कभी मालूम होता है कि गोया है हरइक जर्रा ।
कभी हर चारसू खामोशियाँ महसूस करती हूँ ॥
वही है गुलशने-हस्ती मगर ऐ हमनशीं ! फिर भी।
खुदा जाने कि क्यो वेकैफियाँ महसूस करती हूँ ॥
नही मालूम क्या दुनिया-ए-दिलमें इनकलाब आया।
सकूने-कल्बकी बरबादियाँ महसूस करती हूँ ॥
कफसमें घुटके रह जाता है मेरा जौके-आजादी।
तड़प जाती हूँ जब मजबूरियाँ महसूस करती हूँ ॥
हुजूमे-गमसे घबराकर निकल आते हैं जब आंसू।
शिकस्ते-जब्तकी रुसवाइयाँ महसूस करती हूँ ॥

—आजकल १५ मई १९४६ ई०

श्रीमती जोहरा जमाल

अपने हर तारे-नजरमें गो उन्हे पाती हूँ मैं।
फिर भी दिलकी उलझनोमें हाय खो जाती हूँ मैं ॥

उनसे यूँ मिलती हूँ, अपने दिलकी ख़िलवतगाहमें ।
जैसे कोई गुमशुदा-सी चीज़ पा जाती हूँ मैं ।।
उनकी नज़रोंने न जाने चुपके-चुपके क्या किया ?
दिल बहलता ही नहीं, गो लाख बहलाती हूँ मैं ।।

—आजकल १ अप्रेल १९४६ ई०

श्रीमती सरला बर्क़

उसका सानी जमाल मुश्किल है ।
और मेरी मिसाल मुश्किल है ।।

दिलके हाथों हैं जान आफ़तमें ।
नासमझकी सम्भाल मुश्किल है ।।

लाख मरहम रखे कोई दिलपर ।
ज़ख़्मका अन्दमाल मुश्किल है ।।

अभी नादान है मेरा नासेह ।
कैफ़में एत्तदाल मुश्किल है ।।

हम न कहते थे हज़रते मूसा !
ताबे-बर्क़े-जमाल मुश्किल है ।।

श्रीमती शफीक़ बानो शफीक

बार-हा मैं अपनी तासीरे-फ़ुग़ाँ देखा किया ।
बार-हा बरहम निज़ामे-दो जहाँ देखा किया ।।

फिर रही थी कल जिन आँखोंमें बहारे-आशियाँ ।
आज उन्हीं आँखोंसे ख़ाके-आशियाँ देखा किया ।।

ऐ 'शफ़ीक'! हमदर्दिये-उलफत कि मैं उसके निसार।
नज़अ़में वोह् मेरे मरनेका समा देखा किया॥

—आजकल १५ अक्तूबर १९४५ ई०

श्रीमती ज़ेबा

शबे-म्हताब जब, उस महलकाकी याद आती है।
तका करती हूँ हसरतसे मैं अकसर माहेताबाँको॥
ज़बाने-इश्क़पर 'ज़ेबा' कभी शिकवा नही आता।
बुरा किस मुँहसे कहिये और वह भी हुस्ने-जानाँको॥

उम्मतुलरुफ नसरी

जहाँपनाह! यह गुस्ताख़ियाँ है मजबूरन।
ख़ता मुआफ, मुझे आपसे मुहब्बत है॥

तुम्हारी याद बड़ी ख़ुशगवार थी लेकिन—
दिले-हज़ींके लिए तल्ख़ियाँ बढ़ा भी गईं॥

मेरी तनहाइयोंपै ऐ हमदम!
रातभर शमअ़ रोती रहती है॥

तेरी उल्फतकी लाज रखती हूँ।
वरना तर्के-वफा तो आसाँ है॥

मैं जी तो रही थी हिज्रमें दोस्त!
पर आह! वोह ज़िन्दगी नहीं थी॥

अब आपकी मुसकराहटोमें।
इक ख़ास महक-सी आगई है ॥

वाह, क्या कैफ़े-तसव्वुर है कि अक्सर हिज्रमें।
यूँ हुआ महसूस गोया वोह अचानक आ गये ॥

जानती हूँ कि उन्हें मुझसे मुहब्बत है मगर—
जी धड़कता है वोह जब मुझसे जुदा होते हैं ॥

मैं जीत लाई उनकी मुहब्बत।
ख़ामोश आँसू काम आ गये हैं ॥

तुम भी ख़फा हो, हम भी ख़फ़ा हैं।
लेकिन यह नज़रें क्यो मिल रही हैं ?

तेरा शबाब अपनी मिसाल आप ही रहा।
फिर कोई ऐसा फ़ितनये-दौराँ न उठ सका ॥

कहाँकी तमन्ना, कहाँकी मुहब्बत ?
परीशाँ निगाहोसे मजबूर हैं हम ॥

—निगार अगस्त १९४६ ई०

इक अनोखी-सी बात है ऐ दोस्त !
कैसे मानूँ कि तुमने याद किया ॥

मैंने बेताब होके हाथ बढाये।
उसने बेताब होके चूम लिये ॥

वोह आख़िरे-शब किसीकी आमद।
तारे भी फलकपै सो गये थे ॥

—निगार मार्च १९४७ ई०

आईना देखकर ख़याल आया।
तुम मुझे बेमिसाल कहते थे॥

ग़मे-ज़माना भी रखता है एक ख़ास गुदाज़।
शरीक कर लें उसे भी ग़मे-मुहब्बतमें॥

माज़ीके महल सरामें आओ।
यादोंके हसीं दिये जलायें॥

अब तेरे बग़ैर ज़िन्दगानी।
बेमायनी-सी बात हो गई है॥

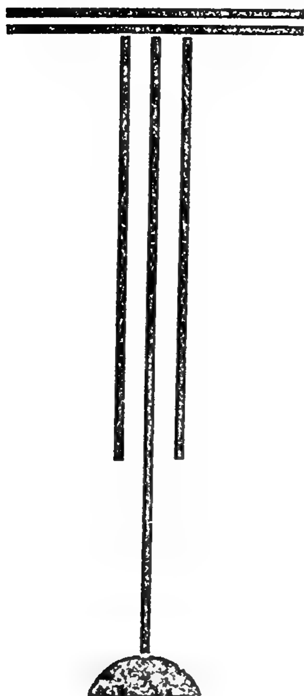
हम तल्ख़ये-हयातसे आगाह हो गये।
तेरी नज़रने फ़िक्रको संजीदा कर दिया॥

ठहर-ठहरके किनारे लगा मेरी किश्ती।
कि नाख़ुदा! मेरा दिल डूबता है साहिलपर॥

अजब नहीं तेरी हलकी-सी मुसकराहटसे।
मेरी हयातका वक़्फ़ा तवील हो जाये॥

—निगार जून १९४६ ई०

मुशायरा





महफिल-मुशाएरा

जहाँ किसी एकने परिहासमे कवित्त कह दिया कि सामनेके पक्षको उसका जवाव कवित्तमे देना लाज़िमी हो जाता था, और कवित्तमे एक-दूसरेपर फब्तियाँ कसता था। एक-दूसरेकी बोलती वन्द करनेके लिए कवित्तमे अटपटे, पेचीदा प्रश्नोत्तरोकी झड़ी लगा देते थे। गरज़ हर गिरोह नहले-पर दहला मारनेकी ताकमे रहता था, और इस तरहकी मुकाविलेवाज़ी करनेके लिए अवकाशके समय खूव अभ्यास किया जाता था।

लावनी कहने वालोंके उत्तर प्रदेश तथा देहलीकी तरफ कलगीवाले और तुर्रेवाले दो दल वहुत प्रसिद्ध हैं। इनमे परस्पर खूव प्रतिद्वन्द्विता चलती है। कभी-कभी वड़े मार्केके मोर्चे जमते हैं। इनमे वहुत-से पेशेवर भी होते हैं। जो वाज़ारो, मेलो, तमाशोमे चगपर गाते हुए फिरते हैं और सुननेवालोंसे पैसा एकत्र करते हैं।

अरव या भारतके इन मजमोको मुशायरा या कवि-सम्मेलन भले ही न कहा जाय, परन्तु नीवकी ईंट तो कहना ही पड़ेगा, क्योकि इन्हीपर इनका निर्माण हुआ है। जव लिखने-पढनेके साधन नही थे, तव यही मजमे साहित्यिक अभिरुचिको तृप्त करते थे।

तरही मुशायरोका प्रचलन सम्भवत सवसे पहिले ईरानमे ईसाकी दसवी शताब्दीमे हुआ।

अरवके उन मजमोमे देहाती जीवनकी झलक होती थी, जन-साधारणके मनोभावोका प्रतिविम्व होता था, और ईरानके इन मुशायरोमे दरवारी शानो-शौकत होती थी। दरवारमे सम्वन्धित शायर वादशाहोंके कृपा-पात्र वननेके लिए और अधिक-से-अधिक अर्थ झटकनेके लिए वादशाहोंकी खुशामदमे प्रशसात्मक अतिशयोक्तियोसे भरे कसीदे कहते थे। अपने-अपने कसीदे कहकर ही सन्तोप नही करते थे, अपितु एक-दूसरेके कसीदेको निम्नस्तरका सावित करनेकी धुनमे उन कसीदोंपर फिलवदी कसीदे भी कहते थे। इसी तरह—गज़लोपर ग़ज़ले कहते थे। इस तरहके मुशायरे दरवारोतक ही सीमित थे। जन-साधारणका इनसे कोई सरोकार नही था।

भारतमे फारसी मुशायरोका प्रचलन सोलहवी शताब्दीमे हुआ। मुगलिया सल्तनतके पाँव जमनेपर यहाँ ईरानी शायर बहुत बड़ी सख्यामे आने लगे, और उन्हे दिल्ली, बीजापुर, गोलकुण्डा आदि सल्तनतोमे सम्मानपूर्वक आश्रय मिलने लगा। तत्कालीन-शासकोका आतिथ्य-सत्कार, उदारता, दान-शीलता और साहित्यिक अभिरुचि ही उनके यहाँ आते रहनेके मुख्य आकर्षण थे। ईरानी शायरोके आनेपर यहाँ भी फारसीके दरबारी मुशायरे होने लगे।

मुशायरोंका विकसित रूप

मुहम्मद शाही दौर (१८वी शताब्दी) मे जब कि मुगलिया सल्तनत पतनोन्मुखी थी, मुशायरे अपने चरम विकासपर थे। इस युगमे रेख़्ता (उर्दूका पूर्व नाम) काफी उन्नति कर चुकी थी, और मीर, दर्द, सौदा, सोज़—जैसे उच्च-कोटिके शायर आस्माने-शायरीपर चमक रहे थे। फारसी अब केवल रस्मी रह गई थी। जन-साधारणकी भाषा रेख़्ता हो गई थी। अतः फारसी मुशायरोके अलावा अब रेख़्तेके मुशायरे भी होने लगे, जो कि फारसी मुशायरोसे पृथकता एव भिन्नता दिखानेकी गरज़से मुराख़्ते कहलाते थे। इन मुराख़्तोकी शानो-शौकत और सजावटका क्या कहना? महीनो पहिलेसे तैयारियाँ होती थी। ऐसे ही एक मुराख़्तेकी कलमी तसवीर मिर्ज़ा फरहतउल्लाबेगने इस प्रकार खीची है—

मुराख़्ते

"चूनेमे अबरक मिलाकर मकानमे कलई की गई थी। जिसकी वजहसे दरो-दीवार बड़े जगमग-जगमग कर रहे थे। तख़्तोपर चादनीका फर्श, उस पर कालीनोका हाशिया, पीछे गावतकियोकी कतार, झाड़ो, फानूनो, हाँडियो, दीवालगीरियो, कुमकुमो, चीनी-कन्दीलो और गिलासोकी वोह बहुतायत थी कि तमाम मकान बकिया नूर बन गया था। जो चीज थी

पूर्वक मुशायरेके लिए आकर्षित किया जा सकता था। जैसे कि वर्त्तमानमे किसी भी समारोहका अध्यक्ष एव उद्‌घाटन कर्त्ता किसी मिनिस्टरको ही बनाया जाता है, चाहे उसे उस समारोहके उद्देश्यसे दूरका भी वास्ता न हो, और सचमुच मिनिस्टरोके कारण समारोह सफल भी होते हैं। इच्छित विद्वानो, प्रतिष्ठित व्यक्तियो, अफसरोका सहयोग तो मिलता ही है, अर्थ-सचय भी सुगमतासे हो जाता है। जब प्रजातन्त्रकालमे यह स्थिति है, तब वह तो सामन्ती युग था। प्राय सभी अच्छे शायर दरबारसे सम्बन्धित होते थे, प्रतिष्ठित नागरिकोका भी कुछ न-कुछ दरबारसे वास्ता होता था और स्वय शासक शायर, अथवा शायर-नवाज होते थे। अत उनको मीर-मुशायरा बनानेका प्रयत्न स्वाभाविक था। श्रोताओ और शायरोके यथा स्थान बैठ जानेके बाद मीर-मुशायरा तशरीफ लाते थे। एक देहलवी मुशायरेके मीर मुशायरा मिर्जा फतहउलमुल्क उर्फ मिर्जा फख़रू युवराज थे। उनकी तशरीफ आवरीका चित्र मिर्जा फरहतउल्लाबेगने इस प्रकार खीचा है—

"हवादारसे उनका नीचे कदम रखना था कि सब सरोकद खड़े हो गये। चार चोबदार सब्ज खिडकीदार पगडियाँ बान्धे, नीची-नीची सब्ज बानातकी अचकने पहने, सुर्ख़शाली रूमाल कमरसे लपेटे, हाथोमे गगा-जमुनी असा और मोरछल लिये हुए हवादारके पीछे थे। उधर मिर्ज़ा फख़रूने फर्शपर कदम रखा। उधर असाबरदार तो उनके सामने आ गये और मोरछलबरदार पीछे हो लिये। इस सिलसिलेमे यह जुलूस आहिस्ता-आहिस्ता शामियाने तक आया। मिर्जा फख़रूने शामियानेके करीब खड़े होकर सबका सलाम लिया। फिर चारो तरफ नजर डालकर कहा "इजाजत है।" सबने कहा—"बिस्मिल्लाह-बिस्मिल्लाह" इजाजत पाकर यह शामियानेमे गये और सबको सलाम करके बैठ गये। दूसरे सब लोग बैठनेकी इजाजतके इन्तजारमे खडे थे। उन सबकी तरफ नजर डालकर कहा—"तशरीफ रखिये, तशरीफ रखिये।" सब लोग सलाम करके

अपनी-अपनी जगह बैठ गये। ... मोरछल बरदार शामियानेके पीछे और असावरदार सामनेकी सफकी पुश्तपर जा खडे हुए। ... "मीर मुशायरेका इशारा पाते ही दोनो चोवदारोने बा-आवाज बुलन्द कहा—"हजरत मुशायरा शुरू होता है।"[1]

मुशायरेके अध्यक्ष यदि स्वय बादशाह या नव्वाब होते तो पहले स्वय गजल पढते फिर क्रमश शायर पढते। यदि किसी सार्वजनिक मुशायरेमे बादशाह शिरकत न फरमाते और प्रबन्धकोके आग्रहपर गजल भेजना मजूर कर लेते तो मुशायरेके प्रारम्भमे किसी खुश गुलूसे बादशाहकी गज़ल पढवाई जाती, फिर मीर मुशायरा अपनी गजल पढते, फिर बारीसे जिस शायरके आगे शमग्र रखी जाती, वह पढता था। शायरोंके पढने का ढग और अन्दाजे-बयान अपना-अपना होता था। मगर कुछ शायर ऐसे भी होते थे, जो पढनेके साथ हाव-भाव भी व्यक्त करते थे। एक झलक देखिये—

"शमअ सरक कर लाला बालमुकुन्द 'हुजूर' के सामने आई। यह जातके खत्री और ख्वाजा मीर 'दर्द' के शागिर्द है। कोई ... बरसका सिन है। सफेद नूरानी चेहरा, उस पर सफेद लिबास ... अँगोछा, कधोपर सफेद काश्मीरी रूमाल। बस जी चाहता था ... देखे ही जाइये। शमग्र सामने आई तो उन्होने उज्र किया ... अब सुनानेके काबिल नही रहा। सुननेके काबिल रह गया ... सभोने इसरार किया तो उन्होने यह किता पढा—

न पाँवोमें जुम्बिश, न हाथोमें ताकत।
जो उठ खींचें दामन हम उस दिलरुबाका॥
सरे-राह बैठे है और यह सदा है।
कि अल्लाहवाली है वे दस्तो-पाका॥

---

[1]आखिरी शमग्र, पृ० ४२–४३।

क़िता इस तरह पढा कि ख़ुद तसवीर हो गये। 'न पाँवोमे ताकत' कहते हुए उठे, मगर पाँवने यारी न की, लडखडाकर बैठ गये। 'न हाथोमे ताकत' कहकर हाथ उठाये, मगर ज़ोफसे वह भी कुछ यूँही उठकर रह गये। दूसरा मिसरा जरा तेज पढा। तीसरा मिसरा पढते वक्त इस तरह बैठ गये, जैसे कोई बे-दस्तो-पा सरे-राह बैठकर सदा लगाता है और एक दफा ही दोनो आँखोको आसमानकी तरफ उठाकर जो चौथा मिसरा पढा तो यह मालूम होता था, गोया सारी मजलिसपर जादू कर दिया'। हरेकके मुँहसे तारीफके बजाय बे साख्ता यही निकल गया कि "अल्लाह वाली है बे दस्तो-पाका।"[१]

अच्छा शेर पढे जाने पर आम तौरपर श्रोताओमेसे 'वाह-वा, सुब्हान अल्लाह, मरहबा' आदिका शोर बुलन्द होता ही था। मगर शायर भी अपने ढगसे दाद देते थे। इस तरहके दाद देनेके ढगकी एक ख़याली तसवीर बाबा-ए-उर्दू अल्लामा प० दत्तात्रिय 'कैफी'ने यूँ खीची है—

"शमअ इन्शाके सामने रखी जाती है। इन्शा गजल पढते है—"

कमर बान्धे हुए चलनेको यॉ सब यार बैठे है।
बहुत आगे गये, बाकी जो है तैयार बैठे है॥

सौदा—क्या मतला कहा है ?
मीर—लफ्ज़ है कि तीरो-नश्तर।
दर्द—सैयद इन्शा इसकी दाद है छाती कूटना।
मुसहफी—वाह क्या हमागीर तबीयत पाई है। क्या दर्दभरा मतला कहा है।
नसीम—बे पनाह मतला हुआ है।
नासिख़—वल्लाह दिल भरा आता है।
ज़ौक़—दो मिसरे है कि दुधारा तेगा, दिलमे खुबा जाता है।
ग़ालिब—लुत्फ यह कि हुस्ने-अदा कितनी नुदरत लिये हुए है।

---

[१]आख़िरी शमअ, पृ० ७१।

इन्शा— न छेड़ ऐ निकहते-बादे-बहारी राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेजार बैठे हैं॥

मीर—"शेर है कि दुगाडा। अब ऐसा शेर और न पढना, वरना एक-आध जनाजा आज मुशायरेसे उठेगा।"[1]

इन उर्दूके मुशायरोका प्रारम्भ भी दरबारोसे हुआ था। अत इनमें भी वे सब दोष आ गये जो फारसी मुशायरोमे थे। प्रतिद्वन्द्वीको नीचा दिखानेके लिए उस्ताद अपने शिष्योके दलके साथ आते। ये शिष्य प्रतिद्वन्द्वीके पढनेपर फब्तियाँ कसते, नुक्ताचीनी करते, व्याकरणकी भूल निकालते, शेरमे कहे हुए भावोके लिए प्रमाण माँगते और अपने पक्षके शायरके गजल पढनेपर खूब-खूब दाद देते। कौन कहाँ बैठे और कौन पहिले या बादमे पढे, इस पर भी ऐतराज उठते। परिणामस्वरूप यह मुशायरे साहित्यिक गोष्ठी न रहकर पहलवानी अखाड़े बन गये।

'सौदा' जिससे नाराज हो जाते, भरी महफिलमे उसकी हिजो कह डालते। 'आतिश'-ओ-'नासिख', 'मुसहफी'-ओ-'इन्शा', 'जुरअत'-ओ 'करेला' भाण्डके वाद-विवादोने जो घिनावना रूप ले लिया था, उसीसे खीझकर 'मुसहफी' ने तत्कालीन मुशायरोके बारे मे कहा था—

बज्मे-शुअ़रा है या यह मुर्गियोंकी पाली है

इन झगडोके कारण बहुत-से लोगोकी तो मुशायरे करानेकी हिम्मत ही न होती थी और जो साहब अपने यहाँ नियमित[2] मुशायरे कराते थे, उनमें-से भी अक्सर स्थगित करनेको बाध्य हो जाते थे। भले आदमी इन मुशायरोमें जानेसे घबराते थे। एक साहब हकीम 'मोमिन'को मुशायरेका निमत्रण देने गये तो 'मोमिन' बोले—"बस साहब मुझे तो मुआफ ही कीजिये। अब देहलीके मुशायरे शरीफोके जानेके काबिल नही रहे। एक साहब हैं,

---

[1]तमसीली मुशायरा, पृ० ४६–४७।

[2]कोई साप्ताहिक, कोई मासिक, कोई छमाही मुशायरे कराते थे।

वह अपनी उम्मत (अनुयायियों, शिष्यों) को लेकर चढ आते हैं। अ
सारा झगड़ेको तो किसीको तमीज नहीं, मुफ़्तमें वाह, वाह, सुब्हान अल्लाह
गुल मचाकर तबीयतको मुन्नगिज (अप्रसन्न) कर देते हैं। दूसरे साह
है, वोह हुदहुद (शिष्यका उपनाम) को साथ लिये फिरते हैं, और ख्वा
स्वाह उस्तादोंपर हमले कराते हैं। खुद तो मैदानमें आते नहीं और अप
ना अहल (मूर्ख) पट्ठोंको मुक़ाबिलेमें लाते हैं। .. .भई मैने
इसी वजहसे मुशायरोंमें जाना ही तर्क कर दिया है।"[1] बाज़-बाज़ शायर
अपने साथ बटेरे भी लाते थे। मिर्ज़ा फरहतउल्लाबेग एक मुशायरे
बारेमें लिखते हुए फरमाते हैं—

"एक चीज़ जो मुझे अजीब मालूम हुई, वोह यह थी कि किले वा
(शाहज़ादे वगैरह) जितने आये थे, सबके हाथोंमें बटेरे दबी हुई थी
यह बटेरबाजी और मुर्गबाजीका मर्ज़ किलेमें बहुत है। रोज़ाना तीतर
बटेरों और मुर्गोंकी पालियाँ होती हैं। एक शाहज़ादे साहबने तो कमा
किया है। एक बड़े छकड़े पर ठाठर लगाकर छोटा-सा घर बना लिया
और ऊपर छतपर मिट्टी डालकर कँगनी बो दी है। ठाठरमें खुदा भू
न बुलाये तो लाखों ही पिदड़ियाँ हैं। जहाँ चाहा छकड़ा ले गये और पिद
ड़ियाँ उड़ादी। ऐसी सधी हुई है कि झल्लड़से एक भी फटकर नहीं जाती
उन्होंने झण्डी हिलाई और वोह उडी, उन्होंने आवाज दी और वोह छतप
आकर बैठ गई।"[2]

मुशायरा प्रारम्भ होनेपर यह बटेरे थैलियोंमें बन्द कर दी जाती थी

कुछ मुशायरे बहुत व्यवस्थित और अनुशासनपूर्ण होते थे। बडे-से
बड़ा आदमी नियम भंग करनेका साहस नहीं कर सकता था। देहली
प्रसिद्ध सूफ़ी शायर ख्वाजा 'दर्द' के यहाँ पाक्षिक मुशायरे हुआ करते थे

---

[1]आखिरी शमअ, पृ० २६।

[2]आखिरी शमअ, पृ० ४२।

शाह आलम भी उसमे शरीक होनेकी अभिलाषा रखते थे। मगर आप टालते ही रहे। बडे आदमियोके स्वागत-सत्कारमे जो कष्ट और ज़िल्लते उठानी पडती है, शायद इसीका ख्याल करके ख्वाजा दर्दने अपनी आध्यात्मिक शान्तिमे विघ्न न डालनेकी गरजसे उन्हे न बुलाना चाहा होगा। फिर भी एक रोज़ सूचित किये बिना ही बादशाह मुशायरेमे तशरीफ ले आये। तशरीफ जब ले ही आये तो जहाँ उचित स्थान मिला, बैठ गये। सयोगकी बात पाँवमे दर्द होनेके कारण बादशाहने पाँव फैला दिये। ख्वाजा साहबको यह अच्छा न लगा। बोले—"महफिलमे पाँव पसारकर बैठना तहजीबके खिलाफ है।" बादशाहने अपने दर्दकी कैफियत बताकर मआज़रत चाही तो ख्वाजा साहबने जवाब दिया कि अगर पाँवमे दर्द था तो यहाँ आनेकी आपने तकलीफ ही क्यो की।"[1]

इन मुशायरोसे उर्दूका खूब प्रसार हुआ। वह कोने-कोनेमे पहुँच गई। ज़बान निखरती गई, मुहावरे ख़रादपर चढकर चमकते गये। भावो और उदाहरणोसे उर्दूका कोश भरता गया।

लाभके साथ हानि भी हुई। उस हानिके निम्न कारण थे—

१—कोई भी शायर उर्दूका पूर्णरूपेण ज्ञान प्राप्त किये बगैर और उस्तादको दिखाये बगैर मुशायरेमे गज़ल नही पढ सकता था। इससे उर्दूका क्षेत्र सीमित होने लगा।

२—विरोधियोकी कटु आलोचनाओके भयसे अक्सर शायर नवीन भावो-उदाहरणोको शेरमे समोते हुए झिझकते थे और वही पुराने सुने-सुनाये विचारोकी पुनरावृत्ति करते रहते थे।

३—शब्दोके बाह्य सौन्दर्य और उसके ज़ाहिरा रख-रखावपर दाद अधिक मिलती थी।

४—शायराना करतब दिखानेके लिए बडे ऊट-पटाँग, अजीबो-

---

[1]आबे-हयातके लतीफे, पृ० २२।

ग़रीब बेगायने मिसरे तरह दिये जाते थे। जिनपर गर्द-गर्द ग़ज़लें लिखी जाती थीं। भला बताइये इस तरहके मज़ाके-सुख़नसे उर्दू-शायरीका क्या महत्त्व बढ़ सकता था—

बुलबुल चमनसे रूठके बैठी है ठूठ पर

न उड़ा सकता हूँ मुँहकी न पकड़ती मक्खी

अयाँ हो नैरंगिये-दिगरसे फ़लक पै बिजली, ज़मीं पै आगी

हुआ रंगी चमन सारा अहा-हा-हा, अहा, हा-हा

ज़मीं ठंडी, हवा ठंडी, मकाँ ठंडा, चमन ठंडा

१८५७ ई० के विप्लवके बाद ग़ज़लके साथ-साथ मुशाअरोंकी भी मुनाज़रात प्रारम्भ हुई। एक ही मिसरे तरहपर [illegible] शायरोंकी

मुनाज़मे

प्राय पुराने [illegible] ग़ज़लें मुशा-अरोंमें [illegible] थे। अतः लाहौरमें १५ अगस्त १८८७ ई० को 'अंजुमने-उर्दू'की स्थापना की गई। जिसमें ग़ज़ल, [illegible], और [illegible] पढ़नेका [illegible] गया। [illegible] महफ़िलोंको मुनाज़मा कहा जाता था। इन मुनाज़मोंके लिए [illegible] शीर्षक निश्चित कर दिये जाते थे, जिनपर शायर नज़्म लिखकर लाते और मुशाअरोंमें पढ़ते थे। इस प्रकार [illegible] [illegible] प्रचलन किया जाता था। [illegible] [illegible] [illegible]।

मुद्रणका प्रसार होनेपर मुशायरे तहरीरी भी होने लगे। पत्र-सम्पादक कोई मिसरा तरह देकर उसपर गजल भेजनेको अच्छे-अच्छे शायरोको आमत्रण करता था और गज़ले आनेपर पत्रमे प्रकाशित करता था। इन लिखित मुशायरोसे उर्दूको बहुत लाभ पहुँचा। न तो इन लिखित मुशायरोमे महफिली मुशायरोकी व्यवस्थाकी परेशानी रही और न पारस्परिक कलहका भय। एक ही जगह भिन्न-भिन्न शायरोका कलाम सुलभ होनेसे जनताकी रुचि परिष्कृत हुई। अच्छे-बुरे समझनेका शऊर आया। जो अच्छे शायर अच्छा न पढ सकनेके कारण बाज़ घटिया शायरोके आगे उनकी गलेबाजीकी वजहसे माँद पड़ जाते थे, अब पूरे आवो-तावके साथ चमके। जनतामे शायरीकी तरफ सही, वास्तविक रुचि उत्पन्न हुई। इसप्रकारके मुशायरे बाज़ उर्दू-पत्र अब भी कराते रहते है। 'शायर' का १६५० का मुशायरा नम्बर हमारे सामने है।

तहरीरी मुशायरे

इन्हीं अँधेरोसे बज़्मे-गीतीको एक दिन रोशनी मिलेगी

मिसरा तरह पर ४ शायरोकी नज्मे और १०६ शायरोकी गजलें १५२ पृष्ठोमे मुद्रित है। यहाँ हम बतौर नमूना कुछ ख्यातिप्राप्त शायरोकी नज्मे और गज़लोके अपनी पसन्दके चन्द अशआर हर रगके बहुत-बहुत शुक्रियेके साथ 'शायर' से उद्धृत कर रहे है।[1]

मुशायरेके इन चुने हुए अशआरसे पाठकोको विदित हो सकेगा कि एक ही मिसरा तरहपर शायर अपने भाव किस तरह व्यक्त करते है। साथ ही पुरानी शायरी और आजकी शायरीमे कितना महान अन्तर आगया है, यह भी जान सकेगे। पुरानी और नई शायरीपर तुलनात्मक अध्ययन हम विस्तारसे सिंहावलोकनमे दे रहे है।

---

[1] अल्लामा सीमाव अकबराबादी द्वारा स्थापित और हजरत एजाज़ सद्दीकी द्वारा सम्पादित। पहले आगरेसे प्रकाशित होता था, अब बम्बईसे प्रकाशित होता है।

नज्मोंके चन्द अशआर

ऐ असरे-नौके शाइर !

ख़बर भी है असरे-नौके शायर[1] कि ज़ीस्त[2] है एक जुर्मे-संगी[3] ।
यह जुर्मकी शमअ़[4] जब बुझेगी तो' दौलते-रोशनी[5] मिलेगी ॥

रुबाब[6] जब बे सदा[7] बनेगा तो राग गूँजेंगे ज़ेरे-गरदूँ[8] ।
कलीम[9] जब ज़ेरे-ख़ाक होगा, कलामको बरतरी[10] मिलेगी ॥

किसीको इसमें नही है घाटा, अदबका[11] है 'जोश' नक़द सौदा ।
गड़ा तो पैगम्बरी मिलेगी, सड़ा तो फिर दावरी[12] मिलेगी ॥

—जोश मलीहाबादी

एक महाजरीन[13] दोस्तसे

तेरी गरीबीका क्या मदावा[14] कि तू है अहसासका[15] सताया ।
रहा अगर तेरा ज़हन[16] मुफलिस तो हर जगह मुफलिसी मिलेगी ॥
ख़ला-ए-ज़हनीको[17] अपने पुर कर[18], नहीं तो जीना भी होगा दूभर ।
यह जेबे-फ़ितरत[19] रही जो ख़ाली तो सारी दुनिया तही[20] मिलेगी ॥
वतनको तू छोड़ दे मगर, क्या, गमे-वतन तुझको छोड देगा ?
वोह साजकी[21] हो, कि मतरुबाकी[22] हरइक सदा दुख भरी मिलेगी ॥
वहाँ जो अहलेवतन मिलेंगे तो वोह भी तसवीरे-गम मिलेंगे ।
अदा-अदा गमज़दा मिलेगी, नज़र-नज़र शबनमी[23] मिलेगी ॥

---

[1]नवयुगके कवि; [2]ज़िन्दगी, [3]महान अपराध, [4]दीपक; [5]प्रकाश-घन, [6]सरोद, [7]बेआवाज़, [8]आकाशके नीचे, [9]शायर, लेखक, [10]श्रेष्टता; [11]साहित्यका, [12]जन्नतकी न्यायाधीशी, [13]देश छोडनेवाले (पुरुषार्थी), [14]उपाय, इलाज, [15]घटिया मनोवृत्तिका, [16]मनोभाव, [17]मानसिक गड्ढेको, [18]भर, [19]मनकी जेब, [20]ख़ाली, [21]वाद्यकी, [22]सगीतज्ञकी, [23]भीगी हुई ।

यहाँका जब तज़करा छिड़ेगा, तो उन फिज़ाओंमें[1] दम घुटेगा ।
बुझी-बुझी होगी शमअ् दिलकी, धुआँ-धुआँ जिन्दगी मिलेगी ॥
न कर मुझे मौतके हवाले, वतनसे ऐ दूर जानेवाले !
यहाँ तड़पती है आज लाशें, यहीपै कल जिन्दगी मिलेगी ॥
यह ज़र्द पत्ते सिमट-सिमटकर समेट ही लेंगे अपने विस्तर ।
चमन सलामत, बहार इक दिन तवाफ[2] करती हुई मिलेगी ॥
नया ज़माना, नया सवेरा, नई-नई रोशनी मिलेगी ।
यह रात जब ले चुकेगी हिचकी हयात[3] इक दूसरी मिलेगी ॥

—नज़ीर बनारसी

मंजिलतक

अभी तो गीतीकी[4] ज़ुल्फ़े-पेचाँको और भी बरहमी[5] मिलेगी ।
अभी तो इन्सानियतको हमदम ! कुछ और शरमिन्दगी मिलेगी ॥
अभी तो दामनपै आदमीयतके और धब्बे है पडनेवाले ।
अभी हयाते-बशरके[6] होंटोको और भी तिशनगी[7] मिलेगी ॥
ख़लूस[8] सोयेगा और कुछ दिन अभी तो मुँह ढाँपकर कफनसे ।
अभी तो महरो-वफाके[9] जजबेको[10] हर घड़ी मौत ही मिलेगी ॥
अभी तो चेहरोंपै और उभरेंगी गमकी पुरहौल झाइयाँ-सी ।
अभी जबीनोपै[11] अहले-गुलशनके और भी बेबसी मिलेगी ॥
कुछ और ख़ूने-जिगरसे गुलकारियाँ-सी होगी हर आस्तींपर ।
अभी कुछ और आँख हर बशरकी इसी तरह शबनमी[12] मिलेगी ॥

---

[1]वातावरणमे, [2]प्रदक्षिणा; [3]ज़िन्दगी, [4]ससाररूपी प्रेयसीकी; [5]परेशानी; [6]मनुष्यजीवनके, [7]पिपासा; [8]स्नेह, मित्रता; [9]नेकी-भलाईकी; [10]भावनाओंको, [11]मस्तकोंपै; [12]भीगी हुई ।

इन्हीं मसाइबकी[1], गोदमें पल रही है 'नाज़िश' मसर्रतें[2] भी।
इसी जहन्नुमकदेसे[3] इक रोज़ राह फ़िरदौसकी[4] मिलेगी॥

—नाज़िश परतापगढ़ी

ग़ज़लोंके चन्द अशआ़र

फ़सुर्दगीकी[5] तहोंमें बाक़ी हरारते-ज़िन्दगी मिलेगी।
निगाहने दूरतक कुरेदा तो आग दिलमें दबी मिलेगी॥
हयाते-ताज़ापै[6] मरनेवाले! हयाते-ताज़ा है मौत ही से।
यह ज़िन्दगी पहले ख़त्म करले, तो फिर नई ज़िन्दगी मिलेगी॥
न भूल ऐ तारके-मुहब्बत[7]! कि तर्के-उल्फ़त भी इक ख़लिश है[8]।
जो फाँस तूने निकाल दी है, वोह फाँस दिलमें लगी मिलेगी॥
ज़रा-सी ख़ातिर शिकस्तगीकी[9] नहीं है बरदाश्त आदमीको।
कलीको वक़्ते-शिकस्त देखो तो मुसकराती हुई मिलेगी॥

—सीमाब अकबराबादी

वोह आप आयेंगे वक़्ते-आख़िर इजाज़ते-दीद[10] भी मिलेगी।
किसे ख़बर थी कि मौत ही में हलावते-ज़िन्दगी[11] मिलेगी॥
तलाशकी हद तो ख़त्म कर दे, हसूले-मकसदकी फ़िक्र क्या है?
जहाँ क़दम लडखड़ाये थककर वहीं यह दौलत पड़ी मिलेगी॥
कमरको कसले तो मुन्तज़िर बन,[12] कि जिसदम होगी तलब[13] अचानक।
न वक़्फ़ा[14] इक साँसका रहेगा, न फ़ुरसत इक बातकी मिलेगी॥

---

[1]मुसीबतोंकी, [2]ख़ुशियाँ, [3]नरकसे, [4]स्वर्गमार्गकी, [5]मुर्झाहटकी; [6]नवजीवनपै, [7]प्रेम-त्यागी, [8]चुभन; [9]पराजयताकी; [10]दर्शनोंकी आज्ञा, [11]जीवन-मिठास, [12]प्रतीक्षा करनेवाला; [13]बुलाहट, [14]अन्तर।

सम्भलके रह, हैं जो रिन्दे-मशरब,[१] हवास खोये तो खो दिया सब।
न होगा लुत्फे-ख़ुदी[२] ही हासिल, न लज्ज़ते-बेख़ुदी[३] मिलेगी॥
कठिन मुहब्बतकी मंज़िलें हैं और आगे बढ़ना है बे सहारे।
जब 'आरज़ू' आप मिट चुकेंगे तो आरज़ूए-दिली[४] मिलेगी॥

—आरज़ू लखनवी

अज़ीज़[५] जब होगा बाग़बॉको चमनका हर गुल हर आशियाना।
उरूस[६] जैसे हो एक शबकी[७] बहार ऐसी सजी मिलेगी॥
ज़मीरे-शबसे[८] तुलूअ[९] होगा इक आफताबे-निज़ामे-ताज़ा[१०]।
नई नवेली सहरकी[११] किरनोसे खेलती ज़िन्दगी मिलेगी॥
बजाए हुब्बेवतन है बाहम चलन बग़ावत कि दुश्मनीका।
यही जो पायाने-हुर्रियत[१२] है, तो ख़ाक आसूदगी[१३] मिलेगी॥
बुने हैं नफरतने जाल क्या-क्या, फरेबो-मकरो-दग़ा-ओ-शरके।
यह जिनके गुन है, यह उनके दावे कि जल्द ही शान्ति मिलेगी॥
जो नेकियाँ हैं शिकस्तख़ुरदा[१४] तो सरनगूँ रास्तीका परचम[१५]।
यही जो नक़्शा है, आदमीयत कफनमे लिपटी हुई मिलेगी॥
यही जो है दुन्द ख्वाहिशोका यही जो है गन्दगीकी पूजा।
सुहज्जब[१६] इन्साँकी वहशियोसे कड़ी-कड़ीसे जुड़ी मिलेगी॥

—असर लखनवी

निशाने-सोज़े-दरूँ[१७] हमारा, मिटा नहीं है न मिट सकेगा।
अगर्चे दिल जलके रह गया है, कुछ आग फिर भी दबी मिलेगी॥

—वहशत कलकतवी

---

[१]सच्चा मद्यप, [२]अहम-आनन्द, [३]आत्मलीनताका सुख, [४]हृदयाभिलाषा; [५]प्रिय, [६]दुल्हन, [७]रातकी, [८]अन्त करण रूपी रात्रिसे, [९]उदय, [१०]नव-व्यवस्था-सूर्य, [११]प्रात कालकी, [१२]स्वतन्त्रताकी सीमा, [१३]सुख-शान्ति; [१४]पराजित; [१५]भलाईकी ध्वजा झुकी हुई, [१६]भद्र पुरुषोकी, [१७]अन्तरग आग।

नकाव रुख़से उठायेंगे वोह, जरूर महशरमे आयेंगे वोह।
मगर इसे पहले सोच लूँ मैं, इजाजते-दीद[1] भी मिलेगी ॥

—नूह नारवी

अगर मैं नाकामे-दीद मर जाऊँ अपने कूचेमे ढूँढ लेना।
वही कही खाको-ख़ूँमें गलताँ[2] मेरी तमन्ना पडी मिलेगी ॥
ब-होश-ह-वास ऐ मुसाफिरे-राहे-जिन्दगी! यह वोह रास्ता है।
जहाँ तुझे रहबरीकी[3] सूरतमें जा-बजा रहजनी[4] मिलेगी ॥

—मानी जायसी

खुदाकी रहमतको पारसा अब, अजाबे-दोजख समझ रहे हैं।
उन्हें गुमाँतक न था कि जन्नत गुनाहगारोको भी मिलेगी ॥

—जोश मलसियानी

चरागे-सजदा जलाके देखो, है बुतकदा दफ्न जेरे-कावा[5]।
हद्दे-इसलाम ही के अन्दर यह सरहदे-काफिरी मिलेगी ॥
हद्दे-दैरो-हरमसे हटकर झुका जवीने-नियाज अपनी।
गरज़से जब बेनियाज होगा, तो उजरते-वन्दगी मिलेगी ॥
है जौरे-सैयादका ही सदका चमनकी हगामा आफरीनी।
तबाहियाँ जिस जगहपै होगी वहीं कहीं जिन्दगी मिलेगी ॥

—सिराज लखनवी

न खौफे-तूफाँ न शौके-साहिल खुशामदें नाखुदा करें क्यों।
जो इन थपेड़ोको सह गये हम तो खुद नई जिन्दगी मिलेगी ॥

—महवी लखनवी

---

[1]देखनेकी आज्ञा; [2]सनी हुई, [3]पथ-प्रदर्शकी, [4]डाकेजनी, [5]जहाँ पहले मूर्तियाँ थी, उन्हीको तोडकर वही कावा वना था, उसी ओर सकेत है।

जो राज आजादिए-वतनमें निहाँ था कौन उसको जानता था।
कि इक तरफ ख्वाजगी[1] मिलेगी तो इक तरफ बन्दगी[2] मिलेगी ॥
यही है जमहूरियतके[3] मानी तो फिर गुलामीका क्या गिला है।
किसीको गम होगा और किसीको मसर्रते-दायमी[4] मिलेगी ॥
जो मुल्कमें इनकलाब आया, तो कत्लो-गारतके साथ आया।
समझ रहे थे समझनेवाले, कि इक नई जिन्दगी मिलेगी ॥
—सरीर काबरी मीनाई गयावी

किसे गुमाँ[5] था कि जुअ़मे-खालिकके बावजूद[6] आदमे-हजीको[7]।
न इशरते-ख्वाजगी[8] मिलेगी, न लज्जते-बन्दगी मिलेगी ॥
अभी कहाँ आदमीकी मंजिल, अभी तो खुद आदमी ही गुम है।
यह अहदे-हाजिर तबाह हो ले, तो मंजिले-आदमी मिलेगी ॥
खिरदको[9] अपनी जुनूँ बनाकर जो जिन्दगीको खिराज[10] देगा।
यहाँ उसी साहबे-खिरदको जुनूँकी पैगम्बरी मिलेगी ॥
यह ना उम्मीदी यह बे यकीनी, यकीनो-उम्मीदकी झलक है।
इन्ही अँधेरोंको पार करके यकीनकी रोशनी मिलेगी ॥
हजार हो राख 'कल्बे-'सागर' मगर इसी राखमें है जौहर।
तलाश जब अहले-दिल करेंगे, शररकी[11] दुनिया दबी मिलेगी ॥
—सागर निजामी

सुना है दीवानगाने-उलफतको[12] दादे-आशुफ्तगी[13] मिलेगी।
अगर यह सच है तो जुल्फेगीतीको[14] और कुछ बरहमी[15] मिलेगी ॥

---

[1]पूज्यता (नेतागिरी), [2]गुलामी (सर झुकानेकी मजबूरी); [3]प्रजातन्त्रताके, [4]स्थाई सुख, [5]विश्वास, खयाल, [6]ईश्वरके भरोसेके होनेपर भी, [7]गमगीन आदमीको, [8]आदरका सुख, मालिकाना आनन्द, [9]अक्लको, [10]कर, टैक्स, [11]चिनगारियोंकी, [12]प्रेमोन्मत्तोंको, [13]परेशानियोंकी दाद, प्रशंसा, [14]संसाररूपी प्रेयसीकी जुल्फोंको, [15]परेशानी।

ग़रूबे-ख़ुरशीदपर[1] रहेगा फ़रोग़े-शबका[2] मदार[3] कबतक ?
यह सोचता हूँ कि इन सितारोंको कब नई ज़िन्दगी मिलेगी ॥
वोह सुबहे-जन्नत कि जिसने ज़ाहिदको दीनो-दुनियासे खो दिया है ।
कहीं मिलेगी तो मैकदेका तवाफ़[4] करती हुई मिलेगी ॥
यही नशेमन तिरी निगाहोंको जिसने महदूद कर दिया है ।
इसी नशेमनके आईनेमें क़फ़सकी तसवीर भी मिलेगी ॥
कहाँ-कहाँ हमसफ़र रहे हम, वही है बेगानगीका आलम ।
किसे ख़बर थी कि हर तमन्ना, ब-सूरते-अजनबी मिलेगी ॥
ग़रज़-परस्तोंकी दोस्तीके फ़रेब सब खुल चुके हैं लेकिन ।
'रविश' यह दुनिया क़दम-क़दमपर ख़ल्सकी[5] मुद्दई मिलेगी ॥
—रविश सद्दीक़ी

इस अंजुमनमें शरीक होनेसे पहले ही मैं यह जानता था ।
नवाज़िशें दूसरोंकी क़िस्मत, मुझे फ़क़त बरहमी मिलेगी ॥
अज़लके दिन जब बिनाए-हस्ती रखी थी, ऐलान कर दिया था ।
सरोंको सौदा[6] नसीब होगा दिलोंको आशुफ़्तगी[7] मिलेगी ॥
हुए थे जिस दिन असीर[8] हम सब, चमनके आसार कह रहे थे ।
तुम आओगे जब क़फ़ससे छुटकर बहार जाती हुई मिलेगी ॥
—माहिरउलक़ादिरी

क़दम बढ़ाओ ख़िज़ाँ नसीबो ! वोह मंज़िलें मुन्तज़िर हैं अपनी ।
जहाँ पहुँचकर निगाहो-दिलको, बहारकी ताज़गी मिलेगी ॥
उस आदमे-नौकी आमद-आमद है जिसके इदराककी[9] दमकसे ।
समाजको बाँकापन मिलेगा, हयातको[10] दिलकशी मिलेगी ॥
—नरेशकुमार शाद

---

[1]सूर्यास्तपर, [2]रात्रिके आनेका, [3]आसरा, भरोसा; [4]परिक्रमा, [5]मित्रताकी हामी, [6]दीवानगी, [7]प्रसन्नता, [8]बन्दी; [9]अक़्लकी; [10]जीवनको ।

नई लहर लाई थी सन्देशा, कि अब नई जिन्दगी मिलेगी।
किसे खबर थी हयाते-ताजा लहूमें लिथड़ी हुई मिलेगी॥
उदास चेहरे, हजी-निगाहे, फ़सुर्दा दिल और सिसकती रूहे।
नये जमानेमें ऐ मुसाफिर! तुझे हर इक शै नई मिलेगी॥
नये-नये रहनुमा[1] फरेबे-खुद ऐतमादीमें[2] घिर गये है।
निगाहे-मजिल-शनास कहिए, जिसे वोह भटकी हुई मिलेगी॥
न उठ सका बार नस्ले-आदमसे जिन्दगीकी नजाकतोका।
किसी नये क़द्र-आश्नाये-हयातको जिन्दगी मिलेगी॥
गुजर सका तू अगर तुलू-ओ-गरूबे-हस्तीकी मंजिलोसे[3]।
तो फिर यही जिन्दगी तेरी ठोकरोमें इक दिन पड़ी मिलेगी॥
—मजर सद्दीकी

थकी हुई सूरतोंसे जिस वक़्त मलगजी चादरें हटेंगी।
तो दश्ते-गुरबतके क़ाफिलोंमें भी रातभर चाँदनी मिलेगी॥
खबीस रूहें[4] अँधेरे जंगलमें, गर्म शोलोंसे खेलती है।
चला है बहका हुआ मुसाफिर कि उस तरफ रोशनी मिलेगी॥
—शफीक जौनपुरी

रहे-वफामें[5] फ़ना जो होगा, उसे नई जिन्दगी मिलेगी।
गुजर मकामे-खुदीसे,[6] पहले हकीकते-बेखुदी[7] मिलेगी॥
यह चन्द लमहे जो मुग़तनम[8] है तलाशे-साहिलमें[9] खो न इनको।
डुबोदे तूफाने-गममें कश्ती, यही कुछ आसूदगी[10] मिलेगी॥
मुझे डराता है बागबाँ क्यों तू बर्के-खातिफकी यूरिशोसे[11]।
जलेगा जलने दे आशियाँको, चमनको तो रोशनी मिलेगी॥
—अलम मुजफ़्फरनगरी

---

[1]नेता; [2]अहमन्यताके जालमे, [3]जीवनके उतार-चढावकी मजिलोंसे; [4]अपवित्र आत्माये; [5]नेक मार्गमे, [6]अहमभावसे; [7]आत्मलीनता; [8]गनीमत समझ, [9]किनारेकी खोजमे; [10]शान्ति-चैन; [11]विजलीके भयानक हमलोसे।

नहीं हूँ मायूस[1] जिन्दगीसे, मुझे यक़ीं है कि इक-न-इक दिन।
अलमके[2] तीरह उफ़क़पै[3] मुझको, शुआए-उम्मीद[4] भी मिलेगी॥

—ज़िया फ़तेहाबादी

यह बज़्मे-अहबाब[5] है यहाँ ऐ दिले-परीशाँ! ख़लूस कैसा?
यहाँ तो हर परदये-वफ़ामें छुपी हुई दुश्मनी मिलेगी॥
हो जिसकी अंजामपर[6] नज़र और उसपै भी मुसकरा रही हो।
रियाज़े-आलममें[7] तुझको ऐ दिल! कहीं न ऐसी कली मिलेगी॥

—जगन्नाथ आज़ाद

ग़मेजहाँ-ओ-ग़मेमुहब्बत, बहर प्याला जुदा है लेकिन।
मज़ाके-रिन्दीमें पुख़्तगी हो, तो कैफ़ियत एक-सी मिलेगी॥
'शमीम' आसाँ नहीं ख़ुशीको, ग़मे-ज़मानासे छीन लेना।
हज़ार दिल आँसुओंमें डूबेंगे तब कहीं इक हँसी मिलेगी॥

—शमीम करहानी

अगर न हो दिलमें सोज़[8] पिन्हाँ[9] नज़रको क्या रोशनी मिलेगी?
ज़मीन उगलेगी चाँद-सूरज मगर वही तीरगी[10] मिलेगी।
ख़ुशी कहाँ है जहाने-ग़ममें? मिली तो इतनी ख़ुशी मिलेगी।
लबोंपै खेलेगी मुसकराहट नज़रमें अफ़सुर्दगी[11] मिलेगी॥
जो क़ैदो-बन्देचमनसे[12] घबराके आशियानेको छोड़ देगा।
करेगा जिस शाख़पर बसेरा वही लचकती हुई मिलेगी॥

—निसार इटावी

---

[1]निराश; [2]दुःखके; [3]अँधेरे आकाशपर, [4]आशा-किरण; [5]इष्टमित्रोंकी गोष्ठी, [6]परिणामपर, [7]संसारमें; [8]दर्द, [9]छुपा हुआ; [10]अँधेरी, [11]मुर्झायापन, [12]चमनकी वन्दिशरूपी क़ैदसे।

हमारी आँखोंमे हुस्न भरकर, वोह ख़ुद ही हमसे झिझक रहे हैं।
किसीकी रंगी अदाके सदके, किसीमें यह सादगी मिलेगी ?

—वफा बराही

कफससे छुटनेपै शाद थे हम कि लज्जते-जिन्दगी मिलेगी।
यह क्या खबर थी बहारे-गुलशन लहूमें डूबी हुई मिलेगी॥
वही जहालतकी बादशाही, वही जलालतकी कजकुलाही[1]।
जो बा-गरज़ दोस्ती मिलेगी, तो बेसबब दुश्मनी मिलेगी॥
नई सहर[2] के हसीन सूरज, तुझे गरीबोसे वास्ता क्या ?
जहाँ उजाला है सीमो-ज़रका[3] वही तेरी रोशनी मिलेगी॥
वोह दिन भी थे जब अँधेरी रातोमें भी कदम राहे-रास्तपर थे।
और आज जब रोशनी मिली है तो जीस्त भटकी हुई मिलेगी॥
जिन अहले-हिम्मतके रास्तोमें बिछाये जाते हैं, आज काँटे।
उन्हींके खूने-जिगरसे रंगी चमनकी हर इक कली मिलेगी॥
वोह हम नहीं हैं कि सिर्फ अपने ही घरमें शमएँ जलाके बैठें।
वहाँ-वहाँ रोशनी करेंगे, जहाँ-जहाँ तीरगी[4] मिलेगी॥

—अब्दुल मजाहिद ज़ाहिद

वोह हुस्न हो या शबाब तेरा, वोह नाज[5] हो या नियाज़[6] मेरा।
सिवाय उल्फतके इस जहाँमें हरेक शै आरज़ी[7] मिलेगी॥

—शफोक कोटी

सितमतराज़ी-ए-दस्ते-गुलचीं,[8] तगाफुले-बाग वाँ[9] सरासर।
यही रविश है तो क्या चमनमें, शगुफ्ता कोई कली मिलेगी॥

—तमन्ना बिजनौरी

---

[1]बाँकी तिर्छी टोपी, [2]सुबहके, [3]चाँदी, धनका, [4]अँधेरी; [5]अभिमान, [6]नम्रता, [7]अस्थाई; [8]फूल तोडनेवालेका जुल्म; [9]मालीकी उपेक्षा।

मक़ामे जबरो-करमसे[1] आगे, इक और मंज़िल भी है कि जिसमें ।
न काहिशे-ग़मपै[2] बस चलेगा, न लज़्ज़ते-सरख़ुशी[3] मिलेगी ॥
—महज़ूँ नियाज़ी

बँधी हुई लौसे इस दियेकी जलेंगे कितने चराग़ देखो ।
मेरे नशेमनकी आग ही से चमनको अब रोशनी मिलेगी ॥
—बिस्मिल सद्दीक़ी लखनवी

अजीब है गरदिशे-ज़माना, हक़ीक़तें बन गईं फ़साना ।
जिन्हे था दावाए-रहनुमाई, उन्हींमें अब गुमरही मिलेगी ॥
'नसीम' इस दौरके सियासतज़दह ख़ुदाओंसे बचके रहना ।
कि दिलपै इक हाथ बहरे-तसकीं[4] तो दूसरेमें छुरी मिलेगी ॥
—नसीम रायपुरी

ग़मे-मुहब्बतका ज़िक्र ही क्या, ख़ुशीके लमहे न रास आये ।
यह सब फ़रेबे-ख़याल ही था, कि तुमसे मिलकर ख़ुशी मिलेगी ।
—सैफ़ भुसावली

उठा सके आदमी तो पहले नज़रसे अपनी नक़ाब उठाये ।
ज़माने भरकी तजल्लियोंसे नक़ाब उलटी हुई मिलेगी ॥
—नवाब झाँसवी

दयारे-ग़ुरबतके यह नशेबोफ़राज़ हिम्मत शिकन हैं लेकिन ।
यही वोह पगडंडियाँ हैं जिनसे कभी तो राहे-ख़ुशी मिलेगी ॥
—रौनक़ दमकनी

यह किसको मालूम था कि कल थी जो जिन्दगी-जिन्दगीकी ज़ामिन ।
वोह जिन्दगी आज जिन्दगीका लहू बहाती हुई मिलेगी ॥
—कौकब उलक़ादिरी

---

[1]कृपा-अत्याचारसे, [2]ग़मकी कमीपै; [3]शराबका आनन्द, [4]धैर्य्य बँधानेके लिए ।

खुदा-फरोशीकी[1] है दुकानें, यह मदरसे और खानकाहें[2] ।
यकीनो-ईमांकी कीमतोंपर यहाँ मताये-खुदी[3] मिलेगी ॥
गरजके बन्दो, जरूरतोंके पुजारियोंका है यह जमाना ।
कदम-कदमपर यहाँ नजरको खलूसे-दिलकी[4] कमी मिलेगी ॥

—अनवर साबिरी

जमील[5] जौके-फ़ना[6] अगर है तो जाँ-फिजा मौत भी मिलेगी ।
तुझे मुबारक हो मरनेवाले कि इक नई जिन्दगी मिलेगी ॥
है मुनहसिर[7] शौके-जुस्तजूपर सुबकरवी[8] हो कि तेजग़मी ।
हरेक मुसाफिरको अपनी मंजिल करीब भी दूर भी मिलेगी ॥
है शर्त सजदेसे बेनियाजी[9] वगर्ना मालूम सरफ़राजी ।
जबींसे धोले जो हाथ उसको इजाजते-बन्दगी मिलेगी ॥
हिसाब उसका है कुछ अनोखा शुमार उसका है कुछ निराला ।
वहीं जफा कामयाब होगी, जहाँ वफाकी कमी मिलेगी ॥

—विशेश्वरप्रसाद मुनव्वर लखनवी

मजाके-उलफत लतीफ होगा तो दिलकशा होगी शामेगम भी ।
अँधेरे उगलेंगे चाँद-तारे, हरइक तरफ चाँदनी मिलेगी ॥
अदब-नवाजाने-दहर[10] 'तुर्फा' करें अदीबोंपर भी नवाजिश[11] ।
अदीब जिन्दा अगर रहेंगे, अदबको भी जिन्दगी मिलेगी ॥

—तुर्फा कुरैशी

तुम्हीने गमसे मुझे नवाजा, तुम्हीसे मुझको खुशी मिलेगी ।
जबींको जिस दरने दाग बख्शा उसीसे ताबिन्दगी[12] मिलेगी ॥

---

[1]ईश्वर-विक्रीकी, [2]मसजिद, दरगाहें, [3]अहमन्यताकी दौलत, [4]सच्ची मित्रताकी, [5]हसीन, [6]मृत्युका चाव; [7]दार-मदार, [8]मन्द चाल, [9]निष्काम उपासना, [10]साहित्य प्रेमी श्रीमत; [11]साहित्यिकोंका सम्मान करें, [12]रोशनी ।

इसी भरोसेपै कट रही है, बुरी-भली जिन्दगी अभी तक।
जहाँसे बेदाद हो रही है, वहींसे फिर दाद भी मिलेगी॥

—नज़र सहवारवी

अँधेरी रातोंमें रोनेवालोंसे कह रही है शफ़ककी सुर्ख़ी[1]।
न अब बहाओ कोई भी आँसू तुम्हे नई रोशनी मिलेगी॥
कोई मजाहिद[2] तो होगा पैदा, जो ख़ूँसे सींचेगा अपना गुलशन।
उसीके ख़ूँसे ख़िज़ाँ रसीदा चमनको फिर जिन्दगी मिलेगी॥

—जमनादास अख़्तर

उजड़के आये है जो वतनसे उन्हे ज़रा इक नज़र तो देखो।
अभी तक उन अहले-ग़मकी आँखोमें आँसुओकी नमी मिलेगी॥

—रामकृष्ण मुज़तर

अमल हर इक नेको-बद तुम्हारा, सदा-ए-गुम्बद है याद रक्खो।
करोगे नेकी मिलेगी नेकी, बदी करोगे बदी मिलेगी॥
इसी भरोसेपै गामज़न[3] हूँ, तेरी मुहब्बतके रास्तेपर।
कही तो तेरा निशाँ मिलेगा, कभी तो तेरी गली मिलेगी॥
हज़ार नाकामियाँ हो 'नश्तर' हज़ार गुमराहियाँ हों लेकिन।
तलाशे-मंज़िल अगर है दिलसे तो एक दिन लाज़िमी मिलेगी॥

—हरगोविन्दसिंह नश्तर हतगामी

यही दरिन्दे उठेंगे इक रोज़ सारे आलमकी रहबरीको ?
"इन्हीं अँधेरोसे बज़्मेगीतीको एक दिन रोशनी मिलेगी"॥

—मशहूद मुफ़्ती

मेरे फ़सानेसे काम क्या है ? मेरा फसाना है नामुकम्मिल।
मेरे फसानेकी राह तुम हो, उसीकी इसमें कमी मिलेगी॥

—वफा बराही

---

[1]सन्ध्याकालीन सूर्यलालिमा; [2]धर्मपर मरनेवाला, [3]चल रहा हूँ।

इन आस्तानोंपै मत झुको तुम, यह शाही ईवाँ[1] है शाने-नख़वत[2]।
ख़लूसो-उल्फ़तके[3] बदले तुमको, यहाँ फ़कत बरहमी[4] मिलेगी ॥
—साज़ बिलगरामी

जबीने-इफलास[5] ख़म[6] न होगी, अब अह्ले दौलतके आस्तांपर[7]।
नया मज़ाके-सजूद[8] होगा, नई रहे-बन्दगी मिलेगी ॥
—ज़फ़र आज़मी

जिसे न काबेसे वास्ता हो, न जिसको मतलब हो बुतकदेसे।
मेरी जबीने-नियाज़में[9] ऐसी रफ़अ़ते-बन्दगी[10] मिलेगी ॥
न देखो नक़्शो-निगारे-हस्ती[11] कि आदमीयत यहाँ है सस्ती।
उरूजे-इन्सानियत कहाँ अब तो पस्ती-ए-आदमी मिलेगी ॥
—प्रेम देहलवी

वोह आग जिसको बुझा दिया था, तुम्हारी बेइल्तफ़ातियोंने[12]।
वोह आग अबतक बुझी नही है, वोह आग दिलमे दबी मिलेगी ॥
ग़मे-जहाँसे फ़राग़[13] मिलता, तो हम ख़ुदासे यह पूछ लेते।
जहाँके मालिक तेरे जहाँमें कभी हमें भी ख़ुशी मिलेगी ?
—नैयर सीमाबी

---

[1]महल, [2]घृणाकी शान लिये हुए, [3]स्नेह-प्यारके, [4]परेशानी-तिरस्कार; [5]दरिद्रताका मस्तक, [6]नही झुकेगी, [7]धनवानोंके दरपर, [8]उपास्य नया होगा, [9]नम्र मस्तकमे, [10]उपासनाकी शक्ति, [11]जीवन-सुखके चिह्न, [12]अकृपाओंने, [13]अवकाश, फ़ुरसत ।

पुराने वक़्तोमे जब कि बिजली नही थी, मुशायरोमें शुअरा ऊँची

मौजूदा मुशायरे

मसनदपर श्रोताओकी तरफ मुँह करके अर्द्ध चन्द्राकार अपने-अपने मर्त्तबेके हिसावसे बैठते थे और शमअ सामने रखी जाने पर अपनी गजल पढते थे[1]।

वर्तमान युगमे ढग बदल गया है। अब मुशायरोकी व्यवस्था आधुनिक व्याख्यान-सभाओ-जैसी होती है। श्रोता मचके सामने और शायर मचपर बैठते है, और मीर मुशायरेके आदेशपर माइकपर जाकर अपना-अपना कलाम सुनाते हैं।

कभी यह मुशायरे तरही (समस्यापूर्ति), कभी गैर तरही, कभी सिर्फ गज़लोंके, कभी सिर्फ नज्मोके और अक्सर मिले-जुले होते है। गैर तरही मुशायरोकी बिना इसलिए डाली गई थी कि शायरका बेहतर-से-बेहतर कलाम सुना जा सके। तरही मुशायरोमे एक खामी तो यह थी कि बाज दफा फुरसत न मिलनेकी वजहसे अच्छे शायर मिसरा तरह पर गजल नही कह सकनेकी वजहसे मुशायरोमे शिरकत नही फरमाते थे; और उनकी गैर मौजूदगी बहुत अखरती थी। दूसरी खामी यह थी कि शायर मिसरेपर गिरह लगानेमे पूरी शक्ति लगा देते थे और प्राय मिलती-जुलती एक-सी गज़लोको सुनते-सुनते लोग ऊब जाते थे।

गैर तरही मुशायरोके रिवाजसे जहाँ यह लाभ हुआ कि हर शायरसे जुदा-जुदा रगका कलाम सुननेको मिलता है, वहाँ यह नुकसान भी पहुँचा

---

[1]इस तरहके कई मुशायरे १९२१–२२ ई० मे दिल्लीके हिन्दुगवर्के वाड़ेमे देखनेका मुझे भी इत्तफाक हुआ है।

—गोयलीय

कि अक्सर शायर पचासो दफाका मुशायरोमे सुनाया हुआ, और कई-कई पत्र-पत्रिकाओमे प्रकाशित कलाम पढते रहते है।

भारत और पाकिस्तानके भिन्न-भिन्न रेडियो स्टेशनोसे भी मुशायरे मासिक-पाक्षिक ध्वनित होते रहते है। कभी यह अपनी ओरसे मुशायरोका आयोजन करते है और कभी पब्लिक मुशायरोको रिले करते रहते है।

इन मुशायरोसे यह फायदा पहुँचा कि घण्टे-डेढ-घण्टेके अर्सेमे ही अच्छे-अच्छे शायरोका कलाम घर बैठे हुए आरामसे सुननेको मिल जाता है और परिवारके सभी सदस्य लुत्फअन्दोज हो सकते है।

हज़रत 'सरूर' तोसवी साहबने एक नया कमाल और ईजाद किया है कि वे बडे-बडे मुशायरोकी रनिंग कमेट्री अपने 'शाने-हिन्द' अख़बारमे शाया करते रहते है। समूचे मुशायरेका हू-ब-हू ऐसा खाका पेश करते है कि वह चल-चित्रके समान नजरोके सामने नाचने लगता है और पढते हुए ऐसा मालूम होता है कि हम स्वय मुशायरेमे अच्छी-से-अच्छी जगह बैठे हुए यह सब देख रहे है।

यूं तो आप स्वतन्त्रता, गालिब, हाली, इकबाल, चकबस्त, वर्क आदि दिवसोपर हुए बृहत मुशायरो और भारत-पाकिस्तानके मिले-जुले मुशायरोकी न जाने कितनी कमेण्ट्री प्रकाशित कर चुके है। हम सिर्फ यहाँ एक मुशायरेका तनिक-सा अश बतौर बानगी दे रहे है। यह मुशायरा पटनेमे बिहार रियासती उर्दू कान्फ्रेन्सके तत्वावधानमे १४ मई १९५१ को हुआ था। जिसे पटनेके रेडियो स्टेशनने भी रात्रिके ९॥ बजेसे ११ बजे तक प्रसारित किया था। मैंने भी यह मुशायरा रेडियोपर सुना था। उसी मुशायरेकी हज़रत 'सरूर' तोसवी द्वारा की गई कमेण्ट्रीकी एक झाँकी देखिये—

"अब ऐलान हो रहा है कि जनाब जगन्नाथ 'आज़ाद' अपना कलाम पेश करेगे। लीजिये 'आज़ाद' साहब अपना पेटेण्ट लिबास पहिने माइक पर तशरीफ ले आये है, और दो-तीन कताआत सुनानेके बाद आपने मज-

मूअये कलाम 'सितारोंसे जर्रोतक' मे-से मतबूआ गज़ल पढनी शुरू की है। मतला फरमाते हैं—

मुहब्बतमें उन्हे अहले नजर कामिल समझते हैं।
जो इस तूफानकी हर मौजको साहिल समझते हैं॥

आज़ाद साहब बहुत अच्छा पढते हैं, इसलिए दाद लेनेमे उन्हे बहुत आसानी रहती है। शेर फरमा रहे हैं—

कभी वो दिन थे अपने दिलको हम अपना न कहते थे।
मगर अब हर बशरके दिलको अपना दिल समझते है॥
वोह फन जो ताब ला सकता न हो दर्दे-ज़मानेकी।
हम ऐसे फनको इक अफसानये-बातिल समझते हैं॥
वही इन्सान साहिलपर, जिन्हे तूफाँका धोका हो।
अगर अड़ जायें तूफानोको भी साहिल समझते हैं॥

इस शेरपर 'आजाद' साहबको अच्छी दाद दी गई है और आप फरमा रहे हैं—

हमीने ऐ मुहब्बत क़द्र पहचानी है कुछ तेरी।
तुझे तूफा, तुझे किश्ती, तुझे साहिल समझते है॥

'आज़ाद' साहब काफी दाद पानेके बाद अपनी जगह पर तशरीफ ले आये है। अब हजरत रविश सद्दीकी अपने खास अन्दाजसे मुसकराते हुए माइकके सामने तशरीफ ले आये हैं, और फरमा रहे हैं 'नज्मका उनुवान (शीर्षक) है 'यादश बख़ैर', इरशाद हुआ है—

शामे-गुरबत ही में सुबहे-वतन भूल गये।
हम तो हर ख़्वाबको ऐ चर्ख़े-कुहन भूल गये॥
नख़वते-शेख़ो-बिरहमन तो बजा है लेकिन—
क्या हुआ, क्यो हमें, हुसनामे-वतन भूल गये॥

दादका एक रेला है कि थमनेमे नही आ रहा है। चुनाचे 'रविश' साहवसे यह शेर तीन-चार मर्तबा पढवाया गया है। इसके वाद इरशाद होता है—

जिन्दगी दश्त नशीनीमें गुज़ारी जिसने।
उसी वहशीको ग़ज़ालाने-ख़तन भूल गये॥
मशरबे-इश्कके आदाब सिखाये जिसने।
उसी मैख़्वारको रिन्दाने-कुहन भूल गये॥

रविश साहवको वहुत ज्यादा दाद दी जा रही है और रविश साहव निहायत अच्छे अन्दाज़मे फरमा रहे हैं—

ख़ारको जिसने दिया शोल-ए-वरहमका जलाल।
ख़ुद फरामोश वोह एजाजे-सुख़न भूल गये॥
नामुकम्मल ही रही वरवादे-वतनकी रूदाद।
आज सब तज़करए दारो-रसन भूल गये॥

रविश साहवको निहायत अच्छी दाद दी जा रही है और हक भी यह है कि उनकी नज्म काविले तारीफ है। फरामते हैं—

दर्द था किस्सये-शब हाये-गुलामी जिनको।
वही ख़ुरशीदकी पहली ही किरन भूल गये॥
क्या यह सब रंजो-मुहन परदये-गफलत है 'रविश'!
हमतो इस सोचमें सब रजो-मुहन भूल गये॥

जनाव 'रविश' साहव निहायत अच्छी दाद पानेके वाद अपनी जगह पर तशरीफ ले आये है और अब हज़रत वालमुकुन्द 'अर्श' मलसियानी माइक पर तशरीफ ले आये है। मतला फरमाया है—

यह दौरे-ख़िरद है, दौरे-जुनूँ, इस दौरमें जीना मुश्किल है।
अगूरकी मै के धोकेमें जहर-आवका पीना मुश्किल है॥

अर्श साहबको मतलेसे ही दाद मिलना शुरू हो गई है और आप फरमा रहे हैं—

जब नाखुने-वहशत चलते थे, रोकेसे किसीके रुक न सके।
अब चाके-दिले-इन्सानीयत, सीते हैं तो सीना मुश्किल है॥

बस कुछ न पूछिये दादका एक रेला है कि थमनेमे नही आ रहा है। दादका शोर कुछ कम हुआ तो 'अर्श' साहबने यह शेर दुबारा पढनेके बाद इरशाद फरमाया—

जो धरमपै बीती देख चुके, ईमांपै जो गुजरी देख चुके।
इस रामो-रहीमकी दुनियामें इन्सानका जीना मुश्किल है॥

दाद उसी अन्दाजसे दी जा रही है और जनाब अर्श फरमा रहे हैं—

इक सब्रके घूंटसे मिट जाती सब तिश्नालबोकी तिश्नालबी।
कम-जर्फी-ए-दुनियाके सदके यह घूंट भी पीना मुश्किल है॥
वह शोला नहीं, जो बुझ जाये, आंधीके एक ही झोंकेसे।
बुझनेका सलीका आसां है, जलनेका तरीका मुश्किल है॥

'अर्श' साहब मुशायरेपर छा गये है और दाद है कि झोलियाँ भर-भर कर दी जा रही है। सुनिये अर्श साहब क्या फरमा रहे हैं—

करनेको रफू कर ही लेंगे, दुनिया वाले सब जख्म अपने।
जो जख्म दिले-इन्सां पै लगा, उस जख्मका सीना मुश्किल है॥

इस शेर पर बहुत ज्यादा दाद दी गई है, और सुनिये अर्श साहब किस कदर बेहतरीन शेर फरमा रहे हैं—

वोह मर्द नहीं जो डर जाये, माहौलके खूनी मंजरसे।
उस हालमें जीना लाजिम है, जिस हालमें जीना मुश्किल है॥

इस शेरने तो एक कयामत बरपा कर दी है, और दाद है कि अपनी इन्तहाको पहुँच गई है। कई वार यह शेर 'अर्श' साहवसे पढवाया जा रहा है, और हरवार दादमे इजाफा हो रहा है। काफी देरके बाद जब दादका रेला कुछ थमा तो अर्श साहव मक्ता फरमा रहे है—

मिलनेको मिलेगा बिलआख़िर ऐ 'अर्श' सकूने–साहिल भी।
तूफाने-हवादससे लेकिन बच जाये सफीना मुश्किल है ॥

'अर्श' साहवकी यह गज़ल विला खौफोतरदीद हासिले-मुशायरा रही और जिस कदर दाद 'अर्श' साहवको मिली, इस मुशायरेमे किसीको नसीव न हुई।

लीजिये 'अनवर' साहव झूमते हुए माइककी तरफ जा रहे है। सुनिये मतला फरमा रहे है—

अब भी यह तअ़ल्लुक बाकी है, अब भी यह करम फरमाते है।
जब कोई खबर सुन लेते है, पुरसिशके लिए आ जाते है ॥

अनवर साबरी और दाद तो अव लाज़िम-ओ-मलज़ूम होकर रह गये है। लिहाज़ा खूब दाद मिल रही है—

वोह आख़िरे-शब चुपके-चुपके, जब याद मुझे फरमाते है।
शबनमकी धड़कती है छाती, तारोंको पसीने आते है ॥
जब उनको ज़रूरत होती है, कुछ बात मुझे समझानेको।
बेरब्तसे मुबहम अफसाने, औरोंको सुनाये जाते है ॥

अनवर साबरी साहवको दाद मिल रही है और 'अख्तर' और 'नेवी' (सचालक मुशायरा) उनका पॉव दवा रहे है, जिसका मतलव यह है कि अनवर साहव और न पढे, क्योकि ११ वजनेमे वक्त वहुत कम रह गया है और 'अख्तर' साहवके प्रोग्रामके मुताविक अभी कुछ और शुअराने

पढना है। 'अनवर' साहबने अपना भारी भरकम पाँव 'अख़्तर' साहबके पाँवपर रख दिया है। जिसका मतलब है कि घबराइये नही, अभी ख़त्म किये देता हूँ। चुनाचे 'अनवर' साहब आख़िरी शेर पढ रहे हैं—

मजबूर तमाशा होते हैं, जब ज़ेरे नकाब उनके जलवे।
दुनियाकी नज़रसे बचनेको वोह मेरी नज़र बन जाते हैं॥

'सरूर' साहबकी की हुई कमेण्ट्री की हमने तनिक-सी झलक दिखाई है। वरना ख़ास-ख़ास आदमी कहाँ बैठे हैं, किस लिबासमे आये हैं, चुपके-चुपके क्या बाते होती हैं, कौन किस पर फब्तियाँ कस रहा है? मुशायरोके संयोजकोपर क्या हाशियाराई हो रही है, वगैरह-वगैरह सभी कुछ जो आँखोसे देखते और कानोसे सुनते हैं, बहुत ख़ूबीसे बयान करते है।

१७ फरवरी १९५४ ई०]



शायरीके नये मोड़

[१९४१ से १९५४ ई० तक]

प्रगतिशील युग

उर्दू शायरीकी नयी करवटे, अभूतपूर्व परिवर्त्तन, द्वितीय महा-युद्धकी–राशनिंग ब्लेक मारकेटिंग कण्ट्रोलिंग आदि–विभीपिकाओका उर्दू-शायरीपर प्रभाव, किसान-मज़दूर पूँजीपति, भारत-विभाजन, स्वराज्य, काँग्रेसी-शासन आदिपर नवयुवक शायरोका दृप्टिकोण

इस युगके कुछ प्रतिनिधि शायर

१. फैज अहमद 'फैज'

२. सरदार जाफिरी

३. 'मजाज' लखनवी

४. 'जज्वी'

५. 'एजाज़' सद्दीकी

६. 'निहाल' सेवाहरवी

७ वालमुकुन्द 'अर्श'

८. जगन्नाथ 'आजाद'

९. नरेशकुमार 'शाद'

१० 'फिक्र' तोसवी

११. मनहरलाल 'ज़िया'

१२. अहमद 'नदीम' कासिमी

१३ 'सलाम' मछली शहरी

१४. 'साहिर' लुधियानवी आदि अनेक शायर